अगले सूत्र से नित्य णत्वादेश होता है । माषवापिणी । माषवापिनी । यहां भी णकार विकल्प से होता है क्योंकि 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिस्सहसमासवचनप्राक्सुबुत्पत्ते' इस परिभाषा से कृदन्त के साथ ही में समास होने से कृत्संज्ञक प्रत्यय का नकार प्रातिपदिकान्त ही माना जाता है । इसी हेतु से सूत्र में नुम् का ग्रहण अलग किया है क्योंकि नुम् समुदाय का भक्त है अतएव प्रातिपदिकान्त नहीं होता है ॥ ८८० ॥

८८१—वा०-युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

प्रातिपदिकान्तादिनकार को णत्वविधान में युवादिकों का प्रतिषेध कहना चाहिये। आर्ययूना । क्षत्रिययूना । प्रपक्वानि । परिपक्वानि । दीर्घाह्नी शरत् ॥ ८८१ ॥

८८२—एकाजुत्तरपदे णः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १२ ॥

जिस में एकाच् उत्तर पद है उस समास में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्ति के नकार को णकारादेश हो । वृत्रहणौ । वृत्रहणः । नुम्, क्षीरपाणि । सुरापाणि । विभक्ति, क्षीरपेण । सुरापेण । ण, वर्त्तमान था फिर णग्रहण पूर्व-विकल्प के बाधने के लिये है ॥ ८८२ ॥

८८३-कुमति च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १३ ॥

कवर्गवान् उत्तर पद वाले समास में पूर्वपदनिमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो। वस्त्रयुगिणौ । वस्त्रयुगिणः । स्वर्गकामिणी। वृषगामिणी । नुम्, वस्त्रयुगाणि । खरयुगाणि । विभक्ति, वस्त्रयुगेण । खरयुगेण ॥ ८८३ ॥

८८४—उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १४ ॥

समास वा असमास में उपसर्गस्थ निमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकारादेश हो । प्रणमति । परिणमति । प्रणयनम् । प्रणायकः । परिणायकः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रगतानायका अस्माद देशात् प्रनायकोदेशः । असमासग्रहण समास की निवृत्ति के लिये है क्योंकि पूर्वपद के अधिकार से समास ही में प्राप्ति थी । णोपदेश-ग्रहण से यहां न हुआ । परिनर्दति । परिनृत्यति ॥ ८८४

८८५—हिनुमीना ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु, मीना इन के नकार को णकारादेश हो । प्रहिणोति । प्रहिणुतः । प्रमीणाति । प्रमीणीतः ॥ ८८५ ॥

८८६–आनिलोट् ॥ अ० । ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे लोट् लकार के आदेश आनि शब्द के नकार को णकारादेश हो । प्रवपाणि । परिवपाणि । प्रयाणि । परियाणि । लोट् ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवपानि । मांसानि ॥ ८८६ ॥

८८७—नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४। १७ ॥

गद, नद, पत, पद, घुसंज्ञक, (डुदाञ् दाण दो देङ् डुधाञ् धेट्) मा, (माङ्-मेङ्) सो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, डुवप्, वह, शमु, चिञ्, दिह, ये धातु परे होतो उपसर्गस्थ मिमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश हो । गद, प्रणिगदति । नद, प्रणिनदति । परिणिनदति । पत,प्रणिपतति । परिणिपतति । पद, प्रणिपद्यते । परिणिपद्यते । घु, प्रणिददाति । प्रणिदाता । प्रणियच्छति । प्रणिद्यति । प्रणिदयते । प्रणिदधाति । प्रणिधयति । मा, प्रणिमिमीते । प्रणिमयते । सो, प्रणिष्यति । परिणिष्यति । हन, प्रणिहन्ति । या, प्रणियाति । वा, प्रणिवाति । द्रा, प्रणिद्राति । प्सा, प्रणिप्साति । डुवप, प्रणिवपति। परिणिवपति । वह, प्रणिवहति । शमु, प्रणिशाम्यति । चिञ्, प्रणिचिनोति । दिह, प्रणिदेग्धि । यहां (८६६) सूत्र से अड्व्यवाय का अनुवर्त्तन करअट के व्यवधान में भी नि के नकार को णकारादेश होता है । प्रण्यगदत् । प्रण्यागदात् ॥ ८८७ ॥

८८८—शेषे विभाषाकखादावषान्त उपदेशे ॥ अ० ॥८ । ४ ।१८॥

उपदेश अवस्था में क, ख जिस के आदि में और ष अन्त में न हो ऐसा पूर्वोक्तों से शेष धातु परे हो तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रणिपचति । प्रनिपचति । प्रणिभिनत्ति । प्रनिभिनत्ति । अकखादिग्रहण से यहां न हुआ । प्रनिकरोति । प्रनिखादति। अषान्तग्रहण से यहां न हुआ । प्रनिपिनष्टि । उपदेशग्रहण का यह फल है कि । प्रनिचखाद । प्रनिचकार । प्रनिपेक्ष्यति । इत्यादिकों में प्रतिषेध हो । तथा विश, प्रणिवेष्टा । प्रणिवेक्ष्यति । यहां प्रतिषेध न हो ॥ ८८८ ॥

८८९–अनितेरन्तः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १९ ॥

अन्त (समीपवर्त्ती) जो सगर्स्थ रेफ उस से परे अन धातु के नकार को ण-

कारादेश हो । हेप्राण् । हेपराण् । प्राणिति । पराणिति । यह (६०८) सूत्र का अपवाद है । अन्त ग्रहण से यहां न हुआ । पर्यनिति । यहां दो वर्णो का व्यवधान है इस से नकार को णकारादेश नहीं होता एकवर्ण का व्यवधान तो अन धातु का जो 'अ, अवयव है उसी से प्राप्त है ॥ ८८९ ॥

८९०–उभौसाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अभ्यासयुक्त अन धातु के दोनों नकारों को णकार आदेश हो । प्राणिणिषति । प्राणिणत् । पराणिणिषति । पराणिणत् ॥ ८९० ॥

८९१–हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २१ ॥

उपसर्गनिमित्त से परे हन् धातु के अकार पूर्वक नकार को णकारादेश हो । प्रहण्यते । परिहण्यते । प्रहणनम् । परिहणनम् अत्पूर्वग्रहण से यहां न हुआ । प्रघ्नन्ति । परिघ्नन्ति। तपरकरण से यहां न हुआ । प्राघानि । पराघानि । ये चिण् के परे प्रयोग हैं ॥ ८९१ ॥

८९२—वमोर्वा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २२ ॥

व, म परे होंतो उपसर्गस्थ निमित्त से परे हन् धातु के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रहण्वः । प्रहन्वः । प्रहण्मः । प्रहन्मः ॥ ८९२ ॥

८९३–अन्तरदेशे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २३ ॥

देश न अभिधेय हो तो अन्तर् शब्द से परे हन् धातु के अकारपूर्वक नकार को णकारादेश हो । अन्तर्हणनम् । अदेश ग्रहण से यहां न हुआ । अन्तर्हननोदेशः अत्पूर्वग्रहण से यहां न हुआ । अन्तरघानि ॥ ८९३ ॥

८९४–अयनं च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २४ ॥

देश न कहा जाय तो अन्तर् शब्द से परे अयन शब्द के नकार को णकारादेश हो । अन्तरयणम् । अदेशग्रहण से यहां न हुआ । अन्तरयनो देशः ॥ ८९४॥

८९५–छन्दस्यृदवग्रहात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २५ ॥

वेदविषय में अवग्रह ऋकार जिस के अन्त में हो उस से परे नकार को णकारादेश हो । जो विग्रह में उच्चारण करने से निरवकाश ग्रहीत हो वह अवग्रह कहाता है । नृमणाः । पितृयाणम । नृ, पितृ ये विग्रह में भिन्न २ भी पद हैं । तथापि यहां मकार और या के साथ ही ऋ, का उच्चारण होता है ॥ ८९५ ॥

८९६—नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २६ ॥

वेदविषय में धातुस्थ निमित्त से तथा उरु और षु से परे नस् शब्द के नकार को णकारादेश हो । धातुस्थ, अग्ने रक्षाणः । शिक्षाणो अस्मिन् । उरु, उरुणस्कृधि। षु, अभीषुणः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये ॥ ८९६ ॥

८९७—उपसर्गाद्बहुलम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २७ ॥

वेदविषय में उपसर्गस्थ निमित्ति से परे नस् के नकार को णकारादेश बहुल करके हो। प्रणसः प्रणो राजा । बहुलग्रहण से प्रनोमुञ्चतम् । यहां नहीं भी होता । भाषा में होता भी है । प्रणसं मुखम् ॥ ८९७ ॥

८९८—कृत्यचः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २८ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अच् जिस के पूर्व उस कृत्स्थ नकार को णकारादेश हो । अन, मान, अनीय, अनि, इनि और निष्ठादेश में जो नकार उन को णकारादेश होता है । अन, प्रयाणम् । परियाणम् । प्रमाणम् । परिमाणम् । मान, प्रयायमाणम् । परियायमाणम् । अनीय, प्रयाणीयम् । परियाणीयम् । अनि, अपारियाणिः। इनि, प्रयायिणी। परियायिणी। निष्ठादेश, प्रहीणः। परिहीणः। प्रहीणवान् । परिहीणवान् । अच् के ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभुग्नः । परिभुग्नः । भुजो कौटिल्ये से निष्ठा के परे प्रयोग है ॥ ८९८ ॥

८९९—वा०—कृत्स्थस्य णत्वे निर्विणस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

निर्विणो हमनेन वासेन ॥ ८९९ ॥

९००—णेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २९ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे ण्यन्तधातु से विहित कृत्तत्स्थ अच् पूर्वक जो नकार उस को णकारादेश विकल्प करकेहो। प्रयापनम्। प्रयापणम् । परियापणम् । परियापनम् । विहितविशेषण से 'प्रयाप्यमाणम्, यहां यक् प्रत्यय के व्यवधान में नकार को णत्वादेश होता है ॥ ९०० ॥

९०१—हलश्चेजुपधात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से और हलादि इजुपध धातु से परे कृत्स्थ अच्पूर्वक जो नकार उसको णकारादेश विकल्प करके हो । प्रकोपनम् । प्रकोपणम् । हल्ग्रहण से यहां न हुआ । प्रेहणम् । इजुपधग्रहण से यहां न हुआ । प्रवपणम् ॥ ९०१ ॥

९०२—इजादेः सनुमः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३१ ॥

उपसर्गस्थनिमित्त से परे इजादि सनुम् हलन्त धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय तत्स्थ अच्पूर्वक नकार को णकारादेश हो । प्रेङ्खणम् । प्रेङ्गणम् । प्रोम्भनम् । इस विषय में णकारादेश सिद्ध था फिर णत्वविधान इजादि सनुम् से नियम के लिये है । सनुम् से हो तो इजादि ही सनुम् से हो अन्य से न हो । प्रमङ्गनम् । यहां णत्व नहीं होता ॥ ९०२ ॥

९०३—वा निंसनिक्षनिन्दाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३२ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से निंस, निक्ष और निन्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रणिंसनम्। प्रनिंसनम् । प्रणिक्षणम् । प्रनिक्षणम् । प्रणिन्दनम् । प्रनिन्दनम् ॥ ९०३ ॥

९०४—न भाभूपूकमिगमिप्यायिवेपाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३३ ॥

उपसर्गस्थनिमित्त से परे भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायि और वेप धातु के कृत्स्थ नकार को णकारादेश न हो । प्रभानम् । परिभानम् । प्रभवनम् । परिभवनम् । प्रपवनम् । परिपवनम् । प्रकमनम् । परिकमनम् । प्रगमनम् । परिगमनम् । प्रप्यायनम् । परिप्यायनम् । प्रवेपनम् । परिवेपनम् । भादिषु पूञ ग्रहणम् । महाभाष्य ८। ४। ३३ । भादिकों में पूञ् धातु का ग्रहण करना चाहिये।किन्तु पूङ् से नित्य णत्व होता है । प्रपवणं सोमस्य ॥ ९०४ ॥

९०५—वा०—ण्यन्तस्य चोपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

प्रभापनम् । परिभापनम् ॥ ९०५ ॥

९०६—षात्पदान्तात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३४ ॥

पदान्त षकार से परे नकार को णकारादेश न हो । निष्पानम् । दुष्पानम् । सर्पिष्पानम् । षग्रहण से यहां निषेध न हुआ । निर्णयः । पदान्त ग्रहण से यहां निषेध न हुआ। कुष्णाति । पुष्णाति । 'पदान्तात्, यहां पदेऽन्तः यह सप्तमी समास इष्ट है । इस से यहां निषेध न हुआ । सुसर्पिष्केण ॥ ९०६ ॥

९०७—नशेःषान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ३५ ॥

षकारान्त नश को णकारादेश न हो । प्रनष्टः । परिनष्टः । षान्तग्रहण से यहां

निषेध न हुआ । प्रणश्यति । अन्तग्रहण भूतपूर्व षान्त से भी णत्व के प्रतिषेध के लिये है । प्रनङ्क्ष्यति परिनङ्क्ष्यति ॥ ९०७ ॥

९०८—पदान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३६ ॥

पदान्त नकार को णकारादेश न हो । वृक्षान् । प्लक्षान् । रामान् ॥ ९०८ ॥

९०९—पदव्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३७ ॥

निमित्त और निमित्ती को पदव्यवधान भी हो तो नकार को णत्वादेश न हो । माषकुम्भवापेन । प्रावनद्धम् ॥ ९०९ ॥

९१०—क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३८ ॥

क्षुभ्नादिक शब्दों में नकार को णकारादेश न हो । क्षुभ्नाति । अजादेश के स्थानिवद् भाव से यहां भी निषेध होता है । क्षुभ्नीतः । इत्यादि । अवाहितलक्षण णत्वप्रतिषेध क्षुभ्नादिकों में देखना चाहिये ॥ ९१० ॥

इति णत्व प्रक्रिया समाप्ता ॥

———0———

॥ अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रिया ॥

९११—वासरूपोऽस्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९४ ॥

धात्वधिकार में स्त्री अधिकार के प्रत्ययों को छोड़ के असरूप (असमानरूप) अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके हो ॥ ९११ ॥

९१२—कृत्याः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९५ ॥

ण्वुल्प्रत्यय से पूर्व जो २ प्रत्यय अब आगे कहें वे सब कृत्य संज्ञक हों । धात्वधिकार में धातु से जिन २ प्रत्ययों का विधान होता है वे प्रथम (३) सूत्र से कृत् संज्ञक होते हैं फिर उन की कृत्य संज्ञा भी होती है ॥ ९१२ ॥

९१३—कर्त्तरि कृत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६७ ॥

कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में हों इस से कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में प्राप्त हुए इस व्यवस्था में ॥ ९१३ ॥

९१४—तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७० ॥

कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म ही में हों । इस से कृत्य

संज्ञक प्रत्ययोंका भाव कर्म में सामान्यनियम है (७९१ । ७९४ । ७९५) सूत्रों से प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल, अर्ह और शक्ति अर्थ में भी कृत्य प्रत्ययों का विधान है। इस विषय के उदाहरण भी उन्हीं सूत्रों पर देचुके हैं वैसे यहां और भी उदाहरण समझना चाहिये ॥ ९१४ ॥

९१५—तव्यत्तव्यानीयरः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९६ ॥

धातु से तव्यत्, तव्य, और अनीयर् प्रत्यय हों। तकार और रेफ स्वर के लिये हैं। भाव में उत्सर्गमात्र एकवचन और नपुंसक लिङ्ग होता है। एधितव्यम्। एधनीयमनेन। कथितव्यः। कथनीयो वा त्वया धर्म्मः। कथितुंयोग्यः शक्यो वा इत्यादि ॥ ९१५ ॥

९१६—वा०—केलिमर उपसङ्ख्यानम्* ॥

पचेलिमाः। पक्तव्याः। माषाः। भिदेलिमाः। भेत्तव्याः। सरलाः। यहां कर्म्म में प्रत्यय है ॥ ९१६ ॥

९१७—वा०—वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च ॥

वस धातु से कर्त्ता में तव्यत् प्रत्यय और वह णित् संज्ञक भी हो यह कहना चाहिये। वसतीति, वास्तव्यः ॥ ९१७ ॥

९१८—कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११३ ॥

कृत्य संज्ञक और ल्युट् प्रत्यय बहुल करके हों। अर्थात् जहां २ कहे हैं वहां से अन्यत्र भी हों। जैसे कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव कर्म्म से अन्यत्र। स्नात्यनेनेति स्नानीयम्। चूर्णम्। दीयतेऽस्मै, दानीयो विप्रः। ल्युट् प्रत्यय करण, अधिकरण और भाव में कहेंगे उन से अन्यत्र जैसे। आच्छाद्यते, आच्छादनं वासः। प्रस्कन्दनम्। प्रतपनम्। बहुलग्रहण से और भी कृत् यथाविधान से अन्यत्र भी होते हैं जैसे। पादाभ्यां ह्रियते, पादहारकः। गले चोप्यते, गलेचोपकः ॥ ९१८ ॥

९१९—अचो यत् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९७ ॥

अजन्त धातु से यत् प्रत्यय हो। मेयम्। जेयम्। अज्ग्रहण क्यों किया हलन्त से तो ण्यत् विधान ही करेंगे। प्रथम जो अजन्त धातु है उस से भी हो इस लिये। जैसे। लभ्यम्। पठ्यम्। यहां आगामी आर्द्धधातुक का विषय मान कर गुण और

(केलिमर्) इस प्रत्यय को वृत्तिकारादिक कोई कर्मकर्त्ता में मानते हैं सो महाभाष्य से विरुद्ध है क्योंकि महाभाष्यकार ने तो उक्त प्रत्यय को कर्मही में दिखलाया है ॥

अवादेश किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है । दित्स्यम् । धित्स्यम् । यहां आगामी आर्द्धधातुकविषय मान कर अकार लोप किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है ॥ ९१९ ॥

९२०-ईद्यति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६५ ॥

यत् प्रत्यय परे हो तो आदन्त अङ्ग को ईकारादेश हो । आदेयम् । गेयम् ॥ ९२० ॥

९२१-वा०-तकिशसिचतियतिजनीनामुपसंख्यानम् ॥

तकि, तक्यम् । शसि, शस्यम् । चति, चत्यम् । यति, यत्यम् । जनि, जन्यम् । यहां जन धातु से यत् प्रत्यय का विधान केवल स्वर के लिये है क्योंकि यत् और ण्यत् में इस का एकसा प्रयोग होता है ॥ ९२१ ॥

९२२-वा०-हनो वध च ॥

हन् धातु से यत् प्रत्यय और हन् को वध आदेश विकल्प करके कहना चाहिये । वध्यः । दूसरे पक्ष में । घात्यः । यहां आगामी ण्यत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ९२२ ॥

९२३-पोरदुपधात् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९८ ॥

अकार जिस के उपधा में हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हो । शप्यम् । लभ्यम् । पवर्गग्रहण से यहां न हुआ । पाक्यम् । वाक्यम् । अदुपदग्रहण से यहां न हुआ । कोप्यम् । गोप्यम् । तपरकरण दीर्घादिकों की निवृत्ति के लिये है । आप्यम् ॥ ९२३ ॥

९२४-शकिसहोश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९९ ॥

शक्लृ और सह धातु से यत् प्रत्यय हो । शक्यम् । सह्यम् ॥ ९२४ ॥

९२५-गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०० ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो गद मद चर और यम धातु से यत् प्रत्यय हो । गद्यम् मद्यम् । चर्यम् । यम्यम् । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रगाद्यम् । प्रमाद्यम् । इस सूत्र में यम धातु का ग्रहण केवल अनुपसर्ग के लिये है क्योंकि यम् धातु से यत् प्रत्यय (९१९) सूत्र से सिद्ध है प्रयाम्यम् । यहां यत् न हुआ वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय हो गया ॥ ९२५ ॥

९२६-वा०-अनुपसर्गाच्चराङि चागुरौ ॥

अनुपसर्ग चर धातु से यत् के विधान में गुरु अभिधेय न हो तो आङ्पूर्वक चर धातु से यत् प्रत्यय का विधान करना चाहिये । आचरितुंयोग्य आचर्योदेशः । अगुरु-

ग्रहण से यहां न हुआ । आचार्य उपनयमानः ॥ ९२६ ॥

१२७–अवद्यपण्यवर्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु॥अ० ॥३।१।१०१॥

गर्ह्य (निन्द्य) पणितव्य (व्यवहार के योग्य) अनिरोध (नरोकना) इन अर्थों में क्रम से अवद्य, पण्य, वर्या ये निपातन हैं । अवद्यं पापम् । गर्ह्य से अन्यत्र अनुद्यम् । मनोदुःखम् । वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय का विधान करेंगे उन में यत् के परे वद्य उसी से नञ् समास में अवद्य सिद्ध होगा वह गर्ह्य अर्थ में निपातन है । अन्यत्र क्यप् प्रत्ययान्त रहेगा जिस से नञ् में अनुद्य होता है। पण्यम् । वस्त्रम्। पण्यः कम्बलः । पण्या गौः । अर्थात् ये वेंचने योग्य पदार्थ हैं । यहां धातु से यत् प्रत्यय है । स्तुत्यम् । शतेन वर्या । यहां वृङ् धातु से यत् है । अन्यत्र वृत्या स्त्रीलिङ्गनिर्देश से यहां न हुआ । वार्या ऋत्विजः ॥ ९२७ ॥

९२८–वह्यं करणम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०२ ॥

वह धातु से करणकारक में यत् प्रत्यय निपातन है । वहत्यनेनेति वह्यम् शकटम् । करण ग्रहण से अन्यत्र वाह्यम् । होता है ॥ ९२८ ॥

९२९—अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०३॥

स्वामी और वैश्य अभिधेय हों तो ऋ धातु से यत् प्रत्यय निपातन है । अर्यः स्वामी वैश्यो वा । स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च महाभाष्य ३ । १ । १०३ ॥ स्वामी अभिधेय हो तो 'अर्य, शब्द को अन्तोदात्तत्व भी निपातन है ॥ ९२९ ॥

९३०–उपसर्य्या काल्या प्रजने ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०४ ॥

प्रजन (प्रथम गर्भग्रहण) में जो (काल्या) समय को प्राप्त हुई वह अभिधेय हो तो उपसर्य्या यह निपातन हो । उपसर्या गौः । उपसर्या स्त्री । यहां उपपूर्व सृज धातु से यत् प्रत्यय निपातन किया है । काल्या प्रजन ग्रहण से यहां न हुआ । उपसार्या वसन्ते वाटिका ॥ ९३० ॥

९३१–अजर्य्यं सङ्गतम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०५ ॥

सङ्गत विशेष्य हो तो नञ्पूर्वक जृष् धातु से कर्त्ता में यत् प्रत्यय निपातन हो । न जीर्यति, अजर्यम् । अजर्यमार्यसङ्गतम् । सङ्गतग्रहण से यहां न हुआ । अजरिता । कम्बलः ॥ ९३१ ॥

९३२–वदः सुपि क्यप् च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०६ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय हो । ब्रह्मोद्यम् । ब्रह्मवद्यम् । वेद का कथन है । सत्योद्यम् । सत्यवद्यम् । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । वाद्यम् । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवाद्यम् ॥ ९३२ ॥

९३३–भुवो भावे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०७ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से भाव में क्यप् यत् प्रत्यय हों । ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम् । देवभूयंगतः । भावग्रहण अगले सूत्रों के लिये है । क्योंकि सत्तार्थक भू धातु से अकर्म्मकत्व मान कर भाव में क्यप् सिद्ध है । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ (भव्यम्) अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभाव्यम् ॥ ९३३ ॥

९३४–हनस्त च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०८ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो हन् धातु से भाव में क्यप् प्रत्यय और हन् को तकार अन्तादेश हो । ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या । गोहत्या । श्वहत्या वर्त्तते । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । घातः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रघातो वर्त्तते । भावग्रहण से यहां न हुआ । श्वघात्यो वृषलः ॥ ९३४ ॥

९३५–वा०–हनस्तश्चित् स्त्रियां छन्दसि ॥

वेदविषयक प्रयोग में (हनस्त च) इस से हन् धातु से विहित क्यप् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में चित् हो । तां भ्रूणहत्यां निगृह्यानुचरणम् । अस्यै त्वा भ्रूणहत्यायै चतुर्थ प्रतिपद्यते । स्त्रीलिङ्ग ग्रहण से यहां चित् नहीं होता है । आघ्नते दस्युहत्थाय । छन्दोग्रहण से यहां चितत्व धर्म्म नहीं होता । श्वहत्या । दस्युहत्या वर्त्तते* ॥ ९३५ ॥

९३६–एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०९ ॥

इण्, स्तु, शासु, वृ, दृ, जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो । इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । यहां (३७१) सूत्र से इत् हो जाता है । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः । क्यप् प्रत्यय वर्तमान था फिर क्यप् के ग्रहण का यह प्रयोजन है कि । अवश्य स्तुत्यः । यहां आवश्यक अर्थ में वक्ष्यमाण जो ण्यत् प्राप्त है वह न हो । क्यब्विधौ वृञ्ग्रहणम्, महाभाष्य ८ । ४ । १०९ । क्यब्विधिमें वृञ् का ग्रहण है इससे

---

*महाभाष्यकार के (श्वह० दस्यु०) इन्हीं प्रयोगों से स्पष्ट है कि हन् धातु से यह क्यप् प्रत्यय लोक में नियम से स्त्रीलिङ्ग में होता है ॥

यहां न हुआ । वार्य्या ऋत्विजः "प्रशस्यस्य श्रः" इस सूत्र में जो प्रशस्य शब्द का ग्रहण है इस ज्ञापन से शंसु धातु से भी क्यप् प्रत्यय होता है क्योंकि प्र उपसर्गपूर्वक शंसुधातु का क्यप् के परे प्रशस्य यह सिद्ध होता है ॥ ९३६ ॥

९३७–वा०–अञ्जेश्चोपसङ्ख्यानं संज्ञायाम् ॥

संज्ञा गम्यमान हो तो अञ्जू धातु से क्यप् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये। आनक्त्यनेनेति, आज्यम् । घृतम् । यहां करण में क्यप् है । यह क्यप् आङ्-पूर्वक ही से होता है । आङ्पूर्वस्य प्रयोगो भविष्यति । महाभाष्य ॥ ३ । १ । १०९ ॥ ९३७ ॥

९३८—ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः॥ अ० ॥ ३ । १ । ११० ॥

क्लृपि और चृति धातुओं को छोड़ कर ऋकारोपध धातु से क्यप् प्रत्यय होता है । वृत्यम् । वृध्यम् अक्लृपिचृतिग्रहण से यहां न हुआ । कल्प्यम् । चर्त्यम् । तपरकरण से यहां न हुआ । कीर्त्यम् । यहां ण्यत् होता है । यह कृत संशब्दने का प्रयोग है ॥ ९३८ ॥

९३९—ई च खनः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १११ ॥

खन् धातु से क्यप् प्रत्यय और खन् को ईकारादेश हो । । खेयम् । यहां ह्रस्व इकार भी आदेश महाभाष्यकार को इष्ट है क्योंकि (सन्धि१०९) सूत्र से ह्रस्व वा दीर्घ दोनों के परे पूर्व पर के स्थान में गुण एकारादेश हो जाता है * ॥ ९३९ ॥

९४०—भृञोऽसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११२ ॥

असंज्ञाविषय में भृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय हो । भृत्याः कर्म्मकराः । असंज्ञा ग्रहण से यहां न हुआ । भार्य्या नाम क्षत्रियाः । भार्य्या गृहिणी । यहां तो ण्यत् होता है । (असंज्ञायाम्) इस प्रतिषेध से भार्या शब्द ण्यत् प्रत्ययान्त संज्ञाविषय में होता है उस के लिये कहते हैं ॥ ९४० ॥

* यहां काशिकाकार ने इकार दूसरा प्रश्लेष मान कर (ये विभाषा) इस आत्व की व्यावृत्ति किई यह उन का व्याख्यान आहोपुरुषिकामात्र है क्यों कि क्यप् सान्नि-योग में विधीयमान इत्व अन्तरङ्ग और यकारादि प्रत्यय के परे विधीयमान आत्व बहिरङ्ग है इस से असिद्धंबहिरङ्गमन्तरङ्गे इसी से आत्व की व्यावृत्ति हो जायगी फिर प्रश्लेष इकार क्यों माना जाय । इस लिये महाभाष्यकार की व्याख्या से विरुद्ध है ॥

९४१–का०–संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वान्न ते भार्या प्रसिध्यति ॥
स्त्रियां भावाधिकारोस्ति तेन भार्या प्रसिध्यति ॥ १ ॥
अथवा बहुलं कृत्याः संज्ञायामिति तत् स्मृतम् ॥
यथा यत्यं यथा जन्यं यथा भित्तिस्तथैव सा ॥ २ ॥

प्र०–पुंलिङ्गविषयक संज्ञा में ण्यत् प्रत्यय केदेखनेसे तुम्हारा भार्या शब्द नहीं सिद्ध होता है । उ०—स्त्री लिङ्ग विषयक (समज्ञायां समज०) इस सूत्र में भाव का अधिकार है उस से भार्या शब्द प्रसिद्ध होता है अर्थात् भाव का अधिकार मान कर स्त्री लिङ्ग में भावविषयक क्यप् प्रत्ययान्त भृत्या होगा तथा ण्यत् प्रत्ययान्त भार्या हो जायगा ॥१॥ अथवा जो उक्त सूत्र में भावाधिकार न माने तो कृत्य और ल्युट् बहुल करके होते हैं वह स्मरण संज्ञा को निमित्त होना चाहिये । जैसे यत्य जैसे जन्य और जैसे भित्ति शब्द हैं वैसे ही वह भार्या शब्द भी सिद्ध होजायगा*॥ ९४१ ॥

९४२–मृजेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११३ ॥

मृज धातु से विकल्प करके क्यप् प्रत्यय हो । मृज्यः ॥ ९४२ ॥

९४३–चजोः कु घिण्यतोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५२ ॥

घित् और ण्यत् प्रत्यय परे हो तो चकार और जकार को कुत्व हो । मार्ग्यः । यहां वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय होता और (३५५) से वृद्धि हो गई ॥ ९४३ ॥

९४४–राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥
अ० ॥ ३ । १ । ११४ ॥

राजसूय, सूर्य मृषोद्य रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य ये क्यप्, प्रत्ययान्त निपातन हैं । अभिषवद्वारा राज्ञा सोतव्यो राजानस्सूयन्ते ऽस्मिन्निति, वा राजसूयः । यज्ञः यहां राजन् शब्दपूर्वक [षुञ] अभिषवे धातु से क्यप् प्रत्यय और निपात से दीर्घादेश होता है । सरत्याकाशमार्गेण गच्छति वा षुवति लोकंकर्मणि प्रेरयतीति सूर्यः । यहां [सृ] गतौ वा [षू] प्रेरणे धातु से क्यप् प्रत्यय और सृ को ऊका-

* अजन्त से विहित यत् प्रत्यय यत जन धातुओं से होता और स्त्री अधिकार में भिद् धातु से अङ् विहित है तथापि बहुल भाव से क्तिन् भी होता है वैसे ही बहुल भाव से ण्यत् प्रत्ययान्त भार्या शब्द हो जायगा ॥

रादेश वा पृ को रुडागम निपातन है । मृषा उद्यत इति मृषोद्यम् । यहां मृषोपपदवद धातु से (९३२) सूत्र से क्यप् और यत् की प्राप्ति में क्यप् विहित है । रोचतेऽसौरुच्यः । यहां रुच धातु से कर्त्ता में क्यप् है । गुप्यते यत्तत् कुप्यम् । यहां संज्ञा में गुप धातु आदि को कुत्व निपातन है । गोप्यते यत्तत् कुप्यम् । सुवर्ण और रजत से भिन्न धन की संज्ञा है । अन्यत्र गोप्यम् । होगा । कृष्टे स्वयमेव पच्यन्त इति कृष्टपच्याः । यहां कर्मकर्त्ता में पच से क्यप् प्रत्यय है । योहि कृष्टे पक्तव्यः सः कृष्टपाक्यो भवति न व्यथत इति, अव्यथ्यः । सूर्यरुच्याव्यथ्याः कर्त्तरि । कुप्यं संज्ञायाम् । कृष्टपच्यस्यान्तोदात्तत्वं च कर्म कर्त्तरि च । महाभाष्य ३।१।११४॥९४४॥

९४५-भिद्योद्ध्यौनदे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११५ ॥

नद अभिधेय होतो भिद्य, उद्ध्य ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं । भिनत्ति कूलमिति भिद्यः । उज्झत्युदकमिति, उद्ध्यः । यहां [उज्झ] त्यागे धातु को धत्व भी निपातन है । नदसे अन्यत्र भेत्ता । उज्झिता ॥ ९४५ ॥

३४६-पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११६ ॥

नक्षत्र अभिधेय हो तो पुष्य, सिद्ध्यौ ये निपातन हैं पुष्यन्त्यस्मिन् कार्य्याणीति पुष्यः । सिद्ध्यन्त्यस्मिनर्था इति सिद्ध्यः । अन्यत्र । पोषणम् । सेधनम् ॥ ९४६ ॥

९४७-विपूयविनीयजित्यमुञ्जकल्कहलिषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

मुञ्ज, कल्क, हलि इन अर्थों में विपूय विनीय जित्य ये शब्द यथासङ्ख्य निपातन हैं । विपू विनी तथा जिसे यत् प्रत्यय की प्राप्ति में क्यप् प्रत्यय निपातन किया है । विपूयः । मुञ्जः । रज्वादि कर्म के लिये शोधने योग्य है । अन्यत्र विपाव्यम् । विनेतुं योग्यो विनीयः । कल्कः । विनेयमन्यत् । जित्यः । हलिः । जेयमन्यत् ॥ ३४७ ॥

९४८-प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११८ ॥

प्रति और अपि से परे ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो । प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि । महाभाष्य ३ । १ । ११८ ॥ मत्तस्य प्रतिगृह्यम् । अनृतंहि मत्तो वदति तस्मान्नापि गृह्यम् । लोक में प्रतिग्राह्यम् । अपिग्राह्यम् ॥ ९४८ ॥

९४९-पदास्वैरिवाह्यापक्ष्येषु च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११९ ॥

पद अस्वैरिन् वाह्या और पक्ष्य अर्थ में ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय हो । पद,

प्रगृह्यम् पदम् जिस की प्रगृह्य संज्ञा करते हैं । अवगृह्यम् पदम् । जिस का अवग्रह करते हैं । अस्वैरी (परतन्त्र) गृह्यकाः पक्षिणः । गृहीत हैं । बाह्या, ग्रामगृह्याः । बाह्य । ग्राम से बाहर बाउरी हैं । नगरगृह्या सेना । नगर से बाहर सेना है यह प्रतीति होती है स्त्रीलिङ्ग निर्देश से यहां न हुआ । ग्रामग्राह्याः पादपाः । पत्त्य, पक्ष में जो हो वह पक्ष्यः कहावे । आर्यैर्गृहीतुंयोग्य आर्यगृह्यः पक्ष्य । अर्जुनगृह्याः । वासुदेवगृह्याः ॥ ९४९ ॥

९५०-विभाषा कृवृषोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२० ॥

कृञ और वृष धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प करके हो । कृत्यम् । कार्यम् । वृष्यम् । वर्ष्यम् ॥ ९५० ॥

९५१-युग्यं च पत्रे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२१ ॥

पत्र (वाहन) अभिधेय हो तो युग्य यह निपातन है । युग्योश्वः । युग्योगौः । यहां युज धातु से क्यप् और धातु को कुत्वादेश निपातन है । पत्रग्रहण से यहां न हुआ योग्यमन्यत् ॥ ९५१ ॥

९५२-अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२२ ॥

अमावस्यत् यह विकल्प करके निपातन है अर्थात् अमापूर्वक वस धातु से ण्यत् प्रत्यय के परे विकल्प करके वृद्धि का अभाव निपातन है अमा शब्द सहायार्थ में वर्त्तमान है । सह वसतोऽस्यां सूर्याचन्द्रमसाविति, अमावस्या । अमावास्या ॥ ९५२ ॥

९५३-छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२३ ॥

निष्टर्क्य, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्या ध्वर्य, खन्य, खान्य देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य स्ताव्य और उपचाय्यपृड ये निपातन हैं । निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः । यहां निस् पूर्वक कृती धातु से ण्यत् प्रत्यय धातु का आद्यन्त विपर्यय और निस के स् को ष् आदेश निपातन है । स्पर्द्धन्ते वा उदेवहूय । यहां देवपूर्वक ह्वेञ् वा हु धातु से क्यप् प्रत्यय धातु के उकार को दीर्घ और तुक् का अभाव निपातन है । प्रणीयः । उन्नीयः । प्र और उद् इन से परे नी धातु से क्यप् । उच्छिष्यः । उत्पूर्वकशिष से क्यप् । मर्यः । मृङ से यत् । स्तर्या । स्तृञ् से

यत् और स्त्री लिङ्ग में निपातन है । धर्य्यः । धृ से यत् । खन्यः । खान्यः । खन से यत् और ण्यत् । शुन्धध्वं दैव्याय कर्म्मणे देवयज्यायै । देवपूर्वक यज धातु से यत् प्रत्यय और स्त्रीलिङ्ग में निपातन है । आपृच्छ्यं धरुणंवाज्यर्षति । आङ्पूर्वक प्रच्छ धातु से क्यप् । प्रतिषीव्यः । प्रतिपूर्वक सीव्यति से क्यप् और षत्व निपातन है । ब्रह्म-वाद्यम । ब्रह्मन् उपपद वद धातु से ण्यत् । भाव्यः । स्ताव्यः । भू और ष्टुञ् से ण्यत् । उपचाय्यपृडम् । यहां उपपूर्वक चिञ् धातु से पृड उत्तर पद के परे ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है। हिरण्यइतिच महाभाष्य ३।१।१२३ हिरण्य अर्थ में उपचाय्यपृड हो॥हि रण्यसे अन्यत्र उपचेयपृडम्। होगा। 'निष्टर्क्ये व्यत्ययं विद्यात्स्निसः षत्वं निपातनात् ॥ ण्यदा-यादेश इत्येतावुपचाय्ये निपातितौ ॥१॥ण्यदेकस्माच्चतुर्भ्यः क्यप् चतुर्भ्यश्च यतो विधिः ॥ ण्यदेकस्माद्यशब्दश्च द्वौ क्यपौ ण्याद्विधिश्चतुः ॥ २ ॥
महाभाष्य ३ । १ । १२३ ॥ इन कारिकाओं का अर्थ निष्टर्क्यादि प्रयोगों की व्याख्या में आगया है ॥ ९५३ ॥

९५४—ऋहलोर्ण्यत् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्त और हलन्तों से ण्यत् प्रत्यय हो । कार्य्यम् । हार्य्यम् । वाक्यम् पाक्यम् ॥ ९५४ ॥

९५५—वा०—पाणौ सृजेर्ण्यद्विधिः ॥

पाणि शब्द उपपद हो तो सृज धातु से ण्यत् प्रत्यय का विधान करने योग्य है पाणिभ्यां सृज्यत इति पाणिसर्ग्या रज्जुः । यहां (९४३) से कुत्व हो गया ॥ ९५५ ॥

९५६—वा०—समवपूर्वाच्च ॥

समवपूर्व भी सृज धातु से ण्यत् प्रतपय विधान करने योग्य है । समवसर्ग्या रज्जुः ॥ ९५६ ॥

९५७—वा०—लपिदभिभ्यां * चेति वक्तव्यम् ॥

लप और दभ धातु से भी ण्यत् प्रत्यय कहने योग्य है । अपलाप्यम् । अप-दाभ्यम् ॥ ९५७ ॥

९५८—न क्वादेः ॥ ७ । ३ । ५९ ॥

* धातुपाठ में अपठित भी दभ धातु है तथापि वार्त्तिकबल से स्वीकार करना चाहिये ॥

कवर्ग जिस के आदि में है उस धातु के चकार और जकार को कुत्व न हो। कूज्यमनेन। खर्ज्यम्। गर्ज्यम्। कूजः। खर्जः। गर्जः॥ ९५८॥

९५९-अजिव्रज्योश्च॥ अ०॥ ७। ३। ६०॥

अज और व्रज धातु को कुत्व न हो। परिव्राज्यम्। परिव्राजः। समाजः। उदाजः यहां घञ् प्रत्यय है। ण्यत् प्रत्य की विवक्षा में (१५५) सूत्र से वीभाव होने से अज धातु का ण्यत् प्रत्ययान्त प्रयोग नहीं होता॥ ९५९॥

९६०-वञ्चेर्गतौ॥ अ०॥ ७। ३। ६३॥

गति अर्थ में वर्त्तमान वञ्च धातु को कवर्गादेश न हो। वञ्चितुं गन्तुं योग्यं वञ्च्यम्। गतिग्रहण से यहां न हुआ। वङ्क्यम्। काष्ठम्। काष्ठटेढ़ा है॥ ९६०॥

९६१-ण्य आवश्यके॥ अ०॥ ७। ३। ६५॥

आवश्यक अर्थ में ण्य प्रत्यय परे हो तो कवर्गादेश न हो। अवश्यपाच्यम्। अवश्यवाच्यम्। आवश्यक से अन्यत्र। पाक्यम्। वाक्यम्॥ ९६१॥

९६२-यजयाचरुचप्रवचर्चश्च॥ अ०॥ ७। ३। ६६॥

ण्य प्रत्यय परे हो तो यज, याच, रुच, प्रवच, ऋच इन धातुओं को कुत्वादेश न हो। याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यम्। यह पाठविशेष का नाम है। अर्च्यम्। यद्यपि ऋदुपधत्व मान कर ऋच धातु से क्यप् प्रत्यय भी प्राप्त है तथापि ण्य के परे जो इस को कुत्व का निषेध किया है इस ज्ञापन से ण्यत् प्रत्यय इस से होगा॥ ९६२॥

९६३-वा०-ण्यप्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम्॥

ण्य के परे कुत्व प्रतिषेध में त्यज धातु का भी उपसंख्यान करना चाहिये। त्यक्तुं योग्यं त्याज्यम्॥ ९६३॥

९६४-भोज्यं भक्ष्ये॥ अ०॥ ७। ३। ६९॥

भक्ष्य अर्थ में भोज्य यह निपातन हो। भोज्यमभ्यवहार्यमितिवक्तव्यम्। महाभाष्य ७। ३। ६९॥ अभ्यवहार्यमात्र अर्थ होतो भोज्य यह निपातन हो। भोज्यः सूपः। भोज्या यवागूः। अभ्यवहार से अन्यत्र। भोग्यः कम्बलः॥ ९६४॥

९६५-ओरावश्यके॥ अ०॥ ३। १। १२५॥

आवश्यक अर्थ द्योत्य होतो उवर्णान्त धातु से ण्यत् प्रत्यय हो। लाव्यम्। पाव्यम्। आवश्यक से अन्यत्र। लव्यम्। पव्यम्॥ ९६५॥

९६६–आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२६ ॥

आङ् पूर्वक षुञ् यु डुवप् रप् लप् त्रपि और चम् धातु से ण्यत् प्रत्यय हो । यह यत् प्रत्यय का अपवाद है । आसाव्यम् । याव्यम् । वाप्यम् । राप्यम् । लाप्यम् । त्राप्यम् । आचाम्यम् । ९६६ ॥

९६७–आनाय्योऽनित्ये ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२७ ॥

अनित्य अर्थ अभिधेय होतो आङ्पूर्वक णीञ् धातु से आनाय्य यह निपातन है । आनाय्यो नित्य इति चेद्दक्षिणाग्नौ कृतं भवेत् । एकयोनौ तु तं विद्यादानेयो ह्यन्यथा भवेत् । महाभाष्य ३ । १ । १२७ । आनाय्यो दक्षिणाग्निः । यहां ण्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है । जो गार्हपत्य अग्नि से लिया जाता और आहवनीय अग्नि के साथ एक योनि को प्राप्त है उस विशेषदक्षिणाग्नि में यह शब्द रूढ़ि है । और जो वैश्य कुल से लिया जाता है उस में आनेय होगा ॥ ९६७ ॥

९६८–प्रणाय्योऽसंमतौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२८ ॥

असंमति अभिधेय होतो प्रणाय्य यह निपातन हो । संमति (भलीभातिमानना वा आदर) जिस में नहो वह असंमति कहावे । प्रणाय्यश्चोरः । प्रणाय्योऽप्रियः । प्रणाय्योऽन्तेवासी । यह विरक्त है । अर्थात् अपनी अनिच्छा से संसार से वैराग्य को प्राप्त है ॥ ९६८ ॥

९६९–पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२९ ॥

मान, हविष्, निवास, सामिधेनी ये अभिधेय हों तो यथाक्रम से पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य, धाय्या, ये निपातन हैं । मीयतेऽनेनेति पाय्यं मानम् । यहां ण्यत् प्रत्यय धातु के आदि म को प आदेश० । अन्यत्र । मेयम् । सम्यङ्नीयते होमार्थमग्निंप्रतीति सान्नाय्यम् । हविः । ण्यत् आयादेश और सम् के अकार को दीर्घ निपातन० । अन्यत्र सन्नेयम् । निचीयते धान्यादिकमत्रेति निकायः । निवासः । आय् और धातु के आदि को कुत्व निपातन० । अन्यत्र । चेयम् । धीयतेऽनया समिदिति, धाय्या । सामिधेनी ऋक् । ण्यत् प्रत्यय निपातन० । सामिधेनी शब्द ऋग्विशेष का वाचक है । धाय्या शंसत्याग्नि र्नेता त्वं सोमक्रतुभिः ॥ ९६९ ।

९७०–क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३० ॥

क्रतु अभिधेय हो तो कुण्डपाय्य और संचाय्य निपातन हैं। कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः। क्रतुः। यहां तृतीयान्त कुण्ड शब्द पूर्वक पिबति से यत् प्रत्यय और युगागम निपातन है। क्रतु ग्रहण से यहां न हुआ। कुण्डपानम्। तथा सञ्चेयः॥ ९७० ॥

९७१-अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ॥ अ० ॥३।१।१३१॥

अग्नि अभिधेय होतो परिचाय्य उपचाय्य और समूह्य से निपातन हों। परिचेतुं योग्यः, परिचाय्यः। उपचाय्यः। परि उपपूर्वक चिञ् धातु से ण्यत् और आयादेश निपातन०। समूह्यं चिन्वीत पशुकामः। सम् पूर्वक वह धातु से ण्यत् प्रत्यय धातु को संप्रसारण और दीर्घत्व निपातन०। अग्नि से अन्यत्र। परिचेयम्। उपचेयम्। संवाह्यम् ॥ ९७१ ॥

९७२-चित्याग्निचित्ये च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३२ ॥

अग्नि अभिधेय हो तो चित्य और अग्निचित्या निपातन हों। चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः। अग्निचयनमेव, अग्निचित्या। यहां भाव में य प्रत्यय अन्तोदात्तत्व और तुगागम निपातन०। अग्निचित्येत्यन्तोदात्तत्वं भावे। महाभाष्य३। १।१३२॥९७२॥

९७३-भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६८ ॥

भव्य आदि कृत्य प्रत्ययान्त कर्त्ता में विकल्प करके निपातन हैं। द्वितीय पक्ष में यथाप्राप्त भाव कर्म में होंगे। भवत्यसौ भव्यः। भव्यमनेन वा। गेयोमाणवकः साम्नाम् गेयानि माणवकेन सामानि। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य। प्रवचनीयो वा गुरुणा स्वाध्यायः। उपस्थानीयोऽन्तेवासी गुरोः। उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः। जायतेऽसौ जन्यः जन्यमनेन वा। आप्लवते, आप्लाव्यः आप्लाव्यमनेन वा। आपतत्यसावापात्यः। आपात्यमनेन वा ॥ ९७३ ॥

इति कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कृदन्तप्रक्रियारम्भः ॥

१७४—ण्वुल्तृचौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३३ ॥

सब धातुओं से ण्वुल् और तृच् प्रत्यय हों । इस प्रकरण में सर्वत्र (३) सूत्र से कृत्संज्ञा होती और (८१३) सूत्र से कृत् संज्ञक प्रत्यय सामान्य से कर्त्ता में होते हैं । करोतीति, कारकः । कर्त्ता । हारकः । हर्त्ता । स्त्रीलिङ्ग में कारिका । कर्त्री । हारिका । हर्त्री । कुटिता यहां (६४५) सूत्र से ङित्व मान कर गुणादेश न हुआ । कोटकः । विजिता (४२८) सूत्र से इट्० । घातकः यहां (५०९) सूत्र से तकारादेश० । दायकः । शमकः । दमकः । रन्धकः । जम्भकः । यहां (१६५) सूत्र से नम् हो० । रधिता (४०८) से नुम् निषे० । एषिता । एष्टा । सहिता । सोढा यहां (२१२) सूत्र से इट् । णिजन्त—भावयिता । सन्नन्त—बुभूषिता । यङन्त—पापचकः । यहां अल्लोप के स्थानिवद्भाव से वृद्धि न हुई । यङ्लुगन्त-पापाचकः ॥ १७४ ॥

१७५—नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥ अ० ॥३।१।१३४॥

नन्द्यादिक, ग्रह्यादिक और पचादिक धातुओं से यथाक्रम से ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय हों । अर्थात् नन्द्यादिकों से ल्यु, ग्रह्यादिकों से णिनि और पचादिकों से अच् होता है । नन्दयतीति, नन्दनः । जनानर्द्दयतीति जनार्द्दनः । मधुसूदनः । विशेषेण भीषयतीति विभीषणः । रामनः । मदनः । दूषणः । लवणः । यहां गणपाठक्रम से निपातन से णत्वादेश है । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । विशयी । यहां वृद्धि का अभाव निपातन है । विषयी । यहां षत्व निपातन है । परिभावी । परिभवी । यहां विकल्प करके वृद्धि का अभाव है । पचतीति पचः । **अजपि सर्वधातुभ्यः** । महाभाष्य ३ । १ । १३४ । सब धातुओं से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । भवतीति भवः । सवः । यह अच् प्रत्यय धातु मात्र से इष्ट है इस से पचादिगण का कथन शब्दों के साथ अनुबन्ध लगाने और बाधकों के बाधने के लिये है जैसे । नदट् । चोरट् । देवट् इत्यादि टित् माने हैं । नदः चोरः । देवः । स्त्रीलिङ्ग में नदी । चोरी । देवी । यहां इगुपधत्व मान कर दिवु धातु से क प्रत्यय प्राप्त था । उस को बाध कर अच् प्रत्यय हुआ । जारभरा । श्वपचा । इन में अगला अण् प्राप्त था । चेक्रियः । लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ॥ १७५ ॥

१७६—इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३५ ॥

इक् जिस के उपधा में हो और ज्ञा प्री तथा कृ धातु से क प्रत्यय हो । बुधः । विक्षिपः ।

। ज्ञः । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः ॥ ६७६ ॥

९७७–आतश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३६ ।

उपसर्ग पूर्व हो तो आदन्त धातु से क प्रत्यय हो । आगे ण प्रत्यय कहेंगे उस का यह अपवाद है । प्रस्थः । प्रवः ॥ ६७७ ॥

९७८–पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३७ ॥

पा घ्रा ध्मा धेट् और दृश धातु से श प्रत्यय हो पिबतीति, पिबः । उर्ध्वंपिबति, उत्पिबः । विपिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । विधयः । पश्यतीति पश्यः ॥ ६७८ ॥

९७९–वा०–जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधः ॥

व्याजिघ्रतीति व्याघ्रः ॥ ६७९ ॥

९८०–अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३८ ॥

उपसर्गरहित लिम्प विन्द धारि पारि वेदि उदेजि चेति साति साहि इन धातुओं से श प्रत्यय हो । लिम्पतीति । लिम्पः । विन्दतीति, विन्दः । धारयतीति, धारयः । पारयतीति, पारयः । वेदयतीति, वेदयः । उदेजयतीति, उदेजयः । चेतयतीति,चेतयः । साति सुखार्थक सौत्र धातु है । सातयतीति, सातयः । साहयतीति, साहयः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रलिपः ॥ ६८० ॥

९८१–वा०–अनुपसर्गान्नौ लिम्पेः ॥

(अनुपसर्गात्०) इस विषय में निपूर्वक लिम्प धातु से श प्रत्यय कहना चाहिये निलिम्पा नाम देवाः ॥ ६८१ ॥

९८२–वा०–गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् ॥

गवादिक उपपद हों तो विद्लृ धातु से श प्रत्यय संज्ञा में कहना चाहिये । गोविन्दः । अरविन्दः । ॥ ६८२ ॥

९८३–ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३९ ॥

उपसर्गरहित डुदाञ् और डुधाञ् धातु से श प्रत्यय विकल्प करके हो । यह (६८६) सूत्र का अपवाद है । ददातीति, ददः । दायः । दधः । धायः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रददातीति,प्रदः । प्रधः । यहां (६७६) सूत्र से क प्रत्यय हो गया ॥ ६८३ ॥

९८४—ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४० ॥

उपसर्गरहित ज्वल आदि कस पर्यन्त धातुओं से विकल्प करके ण प्रत्यय हो यहां इति शब्द आदि शब्द के लिये है । ज्वलतीति, ज्वालः । ज्वलः । चालः । चलः । दूसरे पक्ष में अच् प्रत्यय हो जाता है । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रज्वलः ॥ ९८४ ॥

९८५—वा०—तनोतेरुपसंख्यानम् ॥

तनु धातु से ण प्रत्यय का उपसंख्यान चाहिये । अवतनोतीत्यवतानः ॥ ९८५ ॥

९८६—श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४१ ॥

श्यैङ्, आकारान्त, व्यध, आस्रु, संस्रु, अतीण, अवसा, अवहृ, लिह, श्लिष, श्वस इन धातुओं से ण प्रत्यय हो । आकारान्त ग्रहण से श्यैङ् और अवपूर्वक सा धातु से ण हो जाता तथापि इन का अलग ग्रहण सोपसर्ग लक्षण क प्रत्यय के बाधने के लिये है । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । दायः । धायः । शायः । व्याधः । आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥ ९८६ ॥

९८७—दुन्योरनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४२ ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो दु और नी धातु से ण प्रत्यय हो । दुनोतीति, दावः । नयतीति, नायः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रदवः । प्रणयः ॥ ९८७ ॥

९८८—विभाषा ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४३ ॥

ग्रह धातु से विकल्प करके ण प्रत्यय हो । यह अच् का अपवाद है गृह्णातीति ग्राहः । ग्रहः । यह व्यवस्थित विभाषा है । इस से जलचर में 'ग्राह, नित्य होता और ज्योतिः में 'ग्रह, यही होता है * ॥ ९८८ ॥

---

* इस सूत्र के विवरण में जो काशिकाकार ने (भवतेश्चेति वक्तव्यम्) यह वार्त्तिक-पढ़ा है सो महाभाष्य कार के मत से विरुद्ध है महाभाष्य में उस का मूल नहीं है । इस से प्राप्त्यर्थक भू धातु से अच् प्रत्ययान्त भाव और सत्तार्थक से भव समझ लेना चाहिये । भाव पदार्थों का नाम और भव महादेव और संसार आदि का नाम है ॥

९८९—गेहे कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४४ ॥

गेह (घर) कर्त्ता हो तो ग्रह धातु से क प्रत्यय हो । गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् । गृह्णन्ति पदार्थानिति, गृहाणि वेश्मानि । । तात्स्थ्योपाधि से स्त्री जनों को भी गृह कहते हैं । गृहाः । दाराः ॥ ९८८ ॥

९९०—शिल्पिनि ष्वुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४५ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो तो धातु से ष्वुन् प्रत्यय हो । नृतिखनिरञ्जिभ्य इति वक्तव्यम् । महाभाष्य ३ । १ । १४५ । शिल्प (क्रिया करने की चतुराई) जिस में विद्यमान है वह शिल्पी कहावे ॥ नृत्यतीति, नर्त्तकः । खनकः । नर्त्तकी । खनकी । रञ्जकः । रञ्जकी * ॥ ९९० ॥

९९१—गस्थकन ॥ अ ॥ ३ । १ । १४६ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से थकन् प्रत्यय हो । गायतीति, गाथकः । स्त्री लिङ्ग में । गाथिका ॥ ९९१ ॥

९९२—ण्युट् च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४७ ॥

शिल्पी कर्त्ता में गै धातु से ण्युट प्रत्यय हो । गायतीति, गायनः । स्त्री गायनी ॥९९२॥

९९३—हश्च व्रीहिकालयोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४८ ॥

व्रीहि और काल कर्त्ता हों तो ओहाक् ओहाङ् धातु से ण्युट् प्रत्यय हो । जहाति जलं जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः । व्रीहिः । जहाति भावान् जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः वत्सरः ॥ ९९३ ॥

---

* रजकः, रजकी । यहां शिल्पी कर्त्ता में उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय होता है । इस विषय में जो कौमुदीकार ने लिखा कि भाष्यमत से नृति खनि इन्हीं से ष्वुन् और रञ्जि से क्वुन् होता है । यह उनका कथन अयुक्त है क्योंकि जो रञ्जि से ष्वुन् नहीं होता है तो महाभाष्य कार ने रञ्जि का परिगणन क्यों किया महाभाष्य के परिगणन से नृति खनि और रञ्जि इन तीनों से ष्वुन् प्रत्यय होगा । इस विषय में काशिकाकार ने ष्वुन् प्रत्यय का विधान करके भी नकार का लोप माना यह उन का मानना असङ्गत है क्योंकि नलोप तो कित् ङित् के परे होता है। और महाभाष्य कार भी रजक शब्द उणादिस्थ क्वुन् प्रत्यय से मानते हैं । रजकरजनरजःसु कित्वात् सिद्धम् । कित एवैते औणादिकाः । महाभाष्य ६ । ४ । २४ ॥

९९४—प्रुसृल्वः समभिहारे वुन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४९

समभिहार (वार २ होने) अर्थ में प्रु सृ लू इन धातुओं से वुन् प्रत्यय हो । प्रुसृल्वः साधुकारिणि वुन्विधानम् । महाभाष्य ३ । १ । १४९ ॥ साधुकारी अर्थात् अच्छे प्रकार क्रिया करने वाला कर्त्ता अभिधेय हो तो प्रुसृलू इन से वुन् का विधान करना चाहिये प्रवत इति प्रवकः । सरकः । लवकः । साधुकारित्व अर्थ में वुन्विधान से जहां एक वार भी अच्छे प्रकार काम करना हो वहां वुन् प्रत्यय हो और वार२ भी काम का अच्छा करना न हो वहां नहो ॥ ९९४ ॥

९९५—आशिषि च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १५० ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो तो धातु से वुन् प्रत्यय हो । जीवतात् जीवकः । नन्दतात् नन्दकः ॥ ९९५ ॥

९९६—कर्मण्यण् * ॥ अ० ॥ ३ । २ । १ ॥

कर्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय हो । कर्म तीन प्रकार का है अर्थात् निर्वर्त्य, विकार्य्य, प्राप्य नि । निर्वर्त्य, कुम्भकारः । विकार्य्य, काण्डलावः । शरलावः। प्राप्य, वेदाध्यायः । चर्चापारः । शमनीपारः।सूत्रपाठः । यहां सर्वत्र उपपद समास होता है । आदित्यं पश्यति । हिमवन्तं शृणोति । । ग्रामं गच्छति । इत्यादिकों में अनभिधान से नहीं होता अर्थात् । लोक में अर्थप्रतिपादन करने के लिये आदित्य दर्श आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं ॥ ९९६ ॥

९९७—वा०—अन्नादायेति च कृतां व्यत्ययश्छन्दसि ॥

* जिस का उपादान कारण विद्यमान न हो वह निर्वर्त्य कहाता है जैसे संयोगं करोति । अथवा जिस का विद्यमान भी उपादन कारण न विवक्षित हो वह भी निर्वर्त्य कहाता है जैसे घटं करोति । जब उपादान कारण ही परिणामी माना जाय तो निर्वर्त्य कर्म्म भी विकारी हो जाता है जैसे मृदं घटं करोति और जब भेदविवक्षा है तब वही निर्वर्त्य कर्म्म रहता है जैसे मृदा घटं करोति । विकार्य्य कर्म्म दो प्रकार का है । अर्थात् एक तो प्रकृति के विनाश से जो कुछ विकार उत्पन्न हो जैसे काष्ठादि भस्म और दूसरा गुणान्तर से जो उत्पन्न हो जैसे सुवर्णादि विकार कुण्डलादि । जिस में प्रत्यक्ष वा अनुमान से क्रियाकृत विशेष न पाया जाय अर्थात् प्रथम से न हो वह प्राप्य कर्म्म कहाता है ॥

वेदविषय में अन्नादाय इत्यादिक प्रयोगों के लिये कृत संज्ञक प्रत्ययों का व्यत्यय देखना चाहिये । अत्तीति अदः । अन्नस्यादः अन्नादः तस्मै अन्नादाय । अन्नादाय आदायान्नपतये य आहुतिमन्नादां हुत्वा (अन्नमात्ति) इस विग्रह में कर्मोपपद अद धातु से अण् की प्राप्ति में पचाद्यच् का विधान है ॥ ९९७ ॥

९९८-वा०-शीलिकामिभक्ष्याचारिभ्यो णः पूर्वपद प्रकृतिस्वरत्वञ्च ॥

शीलि, कामि, भक्षि आङ्पूर्वक चर इन धातुओं से ण प्रत्यय और पूर्वपद को प्रकृतिस्वर कहना चाहिये । मांसशीलः । मांसशीला । मांसकामः । मांसकामा । मांसभक्षः । मांसभक्षा । कल्याणाचारः । कल्याणाचारा ॥ ९९८ ॥

९९९-वा०-ईक्षिक्षमिभ्यां च ॥

सुखप्रतीक्षः । सुखप्रतीक्षा । कल्याणक्षमः । कल्याणक्षमा ॥ ९९९ ॥

१०००-ह्वावामश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । २ ॥

कर्म उपपद हो तो ह्वेञ् वेञ् और माङ् धातु से अण् प्रत्यय हो । स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥ १००० ॥

१००१-आतोऽनुपसर्गे कः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो । यह अण् का अपवाद है । गोदः । कम्बलदः । पार्ष्णित्रम् । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । गोसंदायः ॥ १००१ ॥

१००२-सुपि स्थः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४ ।

सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क प्रत्यय हो* । कूटस्थः । समस्थः । विषमस्थः । इस सूत्र में महाभाष्यकारने योगविभाग भी माना है जैसे (सुपि) सुबन्त उपपद हो तो अकारान्त धातु से क प्रत्यय हो । कच्छेनपिबतीति कच्छपः । कटाहेनपिबतीति, कटाहपः । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः । पादपः (स्थः) सुबन्त उपपद होतो स्था धातु

---

* स्था धातु से भी कर्त्ता में क प्रत्यय इष्ट होतो इस से पृथक् क विधान न करते इस लिये पृथक् विधान सामर्थ्य से स्था से भाव में क होगा परन्तु यह भावस्थ क प्रत्यय कर्ता वाले क प्रत्यय की बाधा नहीं करता क्योंकि (स्थः) इस अंश में भाव का प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं है ॥

से क प्रत्यय हो। आखूनामुत्थानमाखूत्थः। शलभोत्थः। सुपि, इस अंश में कर्त्ता में क प्रत्यय होगा (स्थः) भाव में होने के लिये है। अब अगले सूत्रों में (कर्मणि, सुपि) इन दोनोंपदों की अनुवृत्ति है अर्थात् यथायोग्यता से दोनों उपस्थित होते हैं ॥ १००२ ॥

१००३–तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ अ० ॥३।२।५॥

तुन्द और शोक कर्म उपपद हों तो परिपूर्वक मृज और अपपूर्वक नुद धातु से क प्रत्यय हो। आलस्यसुखाहरणयोः। महाभाष्य ३। २। ५ (तुन्दशोकयोः०) इस विषय में आलस्य, सुखाहरण और कहना चाहिये अर्थात् आलस्य गम्यमान हो और सुखोत्पत्ति अर्थ होतो उक्त धातुओं से क प्रत्यय हो। तुन्दं परिमार्ष्टि, तुन्दपरिमृजोलस आस्ते। अन्यत्र। तुन्दपरिमार्जः। शोकापनुदः पुत्रोजातः। अन्यत्र जो संसार की अनित्यता आदि दिखा कर शोकमात्र की निवृत्ति करता किन्तु सुख नहीं उत्पन्न करता वह शोकापनोद होगा ॥ १००३ ॥

१००४–वा०–कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥

मूलानि विभुजति, मूलविभुजो रथः। नखानि मुञ्चन्ति, नखमुचानि धनूंषि। काक-गुहास्तिलाः। सरसिरुहं कुमुदम् ॥ १००४

१००५–प्रे दाज्ञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६ ॥

कर्म उपपद हो तो प्रपूर्वक दा और ज्ञा धातु से क प्रत्यय हो। धनं प्रददाति, धनप्रदः। शास्त्रप्रज्ञः। पथिप्रज्ञः। प्रमात्र से अन्यत्र। धनसंप्रदायः ॥ १००५ ॥

१००६–समि ख्यः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७ ॥

कर्म उपपद हो तो सम्पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय हो। शास्त्रसंख्यः। गोसंख्यः ॥ १००६ ॥

१००७–गापोष्टक् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८ ॥

कर्म उपपद होतो उपसर्ग रहित गा, पा धातुओं से टक् प्रत्यय हो। सामगायतीति सामगः। स्त्री सामगी। सुराशीध्वोः पिबतेः। महाभाष्य ३। २। ८। सुरापः सुरापा। शीधुपी। इन से अन्यत्र। क्षीरपा ब्राह्मणी। पिबति से अन्यत्र सामसंगायः ॥ ॥ १००७ ॥

१००८–वा०–बहुलं तणि ॥

तण (संज्ञा, छन्दः) विषय में पिबति से बहुल करके टक् प्रत्यय हो । या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति या ब्राह्मणी सुरापा भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति ॥ १००८ ॥

१००९—हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९ ॥

कर्म उपपद हो तो अनुद्यमन अर्थ में वर्त्तमान हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो । उद्यमन उद्यम को कहते हैं उस से अन्य अनुद्यमन कहाता है । अंशं हरति, अंशहरः । भागहरः । रिक्थहरः।अनुद्यमन ग्रहण सेयहांन हुआ।भारहारः ॥ १००९ ॥

१०१०—वा०—अच्प्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टि-तोमरघटघटीधनुष्षुग्रहेरुपसंख्यानम् ॥

अच् प्रकरण में शक्ति, लाङ्गल, अंकुश, यष्टि, तोमर, घट, घटी, धनुष् ये उपपद हों तो ग्रह धातु से अच् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये। शक्तिग्रहः । लाङ्गलग्रहः । अंकुशग्रहः । यष्टिग्रहः । तोमरग्रहः । घटग्रहः । घटीग्रहः । धनुर्ग्रहः॥ १०१० ।

१०११—वा०—सूत्रे च धार्य्येऽर्थे ॥

तथा सूत्र उपपद हो तो धारणार्थक ग्रह धातु से उपसंख्यान करना चाहिये । सूत्रग्रहः । सूत्र को धारण करता है । धार्य्यर्थ से अन्यत्र अर्थात् जो सूत्र को ग्रहण करता है वह सूत्रग्राह कहाता है ॥ १०११ ॥

१०१२—वयसि च ॥ अ० ॥ ३ । २। १० ॥

वयस् यौवनादिभाव गम्यमान हो तो कर्मोपपद हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो। यह उद्यमन के लिये हैं । कवचहरः कुमारः । शकटहरः वृषभः ॥ १०१२ ॥

१०१३—आङिताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११ ॥

ताच्छील्य (तत्स्वभावता) अर्थ गम्यमान हो और कर्म उपपद हो तो आङ् पूर्वक हृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो । पुष्पाणि आहरति तच्छीलः । पुष्पाहरः । फलाहरः । स्वभाव से निष्प्रयोजन भी पुष्प और फलों को लेता है । ताच्छील्य से अन्यत्र भारमाहरतीति, भाराहारः ॥ १०१३ ॥

१०१४—अर्हः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२ ॥

कर्म्म उपपद हो तो अर्ह धातु से अच् प्रत्यय हो । वेदार्हः । स्त्री वेदार्हा ॥१०१४॥

१०१५-स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३ ॥

स्तम्ब और कर्ण ये सुबन्त यथासंख्य उपपद हों तो रम और जप धातु से अच् प्रत्यय हो । रम अकर्म्मक और जप शब्दकर्म्मक है इस से यहां कर्म्म शब्द की अनुवृत्ति नहीं होती है । स्तम्बकर्णयोर्हस्तिसूचकयोः । महाभाष्य ३ । २ । १३ (स्तम्बकर्णयोः) यहां हस्तिन् , सूचक और कहना चाहिये अर्थात् हस्ती सूचक अभिधेय हों तो उक्त अच् प्रत्यय हो । स्तम्बे रमते, स्तम्बेरमः । हस्ती । कर्णेजपति । कर्णेजपः सूचकः । हस्ति सूचक से अन्यत्र स्तम्बेरन्ता । कर्णेजपिता मशकः ॥ १०१५ ॥

१०१६-शमि धातोः संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४ ॥

शम् उपपद हो तो संज्ञाविषय में धातु मात्र से अच् प्रत्यय हो । शंकरः । शम्भवः । शंवदः । यहां धातुग्रहण हेत्वादि अर्थों में जो ट प्रत्यय का विधान करेंगे उस के बाधने के लिये है । अर्थात् उन अर्थों में भी शम्पूर्वक कृञ् धातु से अच् प्रत्यय हो । शंकरा नाम परिव्राजिकाशंकरा नाम शकुनिका तच्छीला च ॥ १०१६ ॥

१०१७-अधिकरणे शेतेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५ ॥

सुबन्त उपपद हो तो अधिकरण में शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो । खे शेते, खशयः । गर्त्तशयः ॥ १०१७ ॥

१०१८-वा०-अधिकरणे शेतेः पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ॥

(अधिकरणे शेतेः) यहां पार्श्वादि पूर्व हो तो भी उपसंख्यान करना चाहिये । पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरशयः ॥ १०१८ ॥

१०१९-वा०-दिग्धसहपूर्वाच्च ॥

दिग्धसहपूर्वक भी शीङ् धातु से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । दिग्धेन सह शेते, दिग्धसहशयः । यहां (दिग्धसह) इतना समुदाय पूर्व इष्ट किन्तु प्रत्येक शब्द पूर्व नहीं इष्ट है ॥ १०१९ ॥

१०२०-वा०उत्तानादिषु कर्त्तृषु ॥

कर्त्तृवाचक उत्तानादिक शब्द उपपद हों तो शीङ् धातु से अच्, प्रत्यय हो । उत्तानःशेते उत्तानशयः । अवनतोमूर्द्धायस्य स, अवमूर्द्धा । अवमूर्द्धा शेते, अवमूर्द्धशयः ॥ १०२० ॥

१०२१-वा-गिरौ डश्छन्दसि

गिरि शब्द उपपद होतो वेदविषय में शीङ् धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये। गिरौ शेते, गिरिशः। लोक में गिरिश, यह शब्द (स्त्रैण०६८२)सूत्र से तद्धितविषय में होता है ॥ १०२१ ॥

१०२२–चरेष्टः। अ० ॥ ३ । २॥ १६ ॥

अधिकरणवाची सुबन्त उपपद होतो चर धातु से ट प्रत्यय हो। खेचरतीति, खेचरः। खेचरी। निशाचरः। निशाचरी। कुरुचरः। कुरुचरी। मद्रचरः। मद्रचरी। दिवाचरः। दिवाचरी। अधिकरण ग्रहण से यहां न हुआ। कुरूँश्चरतीति। पञ्चालाँश्चरतीति * ॥ १०२२ ॥

१०२३–भिक्षासेनादायेषु च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७ ॥

भिक्षा सेना और आदाय शब्द उपपद होंतो चर धातु से ट प्रत्यय हो। भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः। सेनाचरः। आदाय यह ल्यबन्त है। आदाय चरतीति, आदायचरः। सहचरः यह तो पचादिगण में जो चरट् शब्द का पाठ है उस से बनेगा॥१०२३॥

१०२४–पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८ ॥

पुरस् अग्रतस् अग्रे ये उपपद होंतो सृ धातु से ट प्रत्यय हो। पुरस्सरति, पुरस्सरः। अग्रतस्सरः। अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरति अग्रेसरः। यहां अग्रे शब्द एकारान्त निपातन से है ॥ १०२४ ॥

१०२५-पूर्वे कर्त्तरि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १९ ॥

कर्त्तृवाचक पूर्व शब्द उपपद होतो सृ धातु से ट प्रत्यय हो। पूर्वः सरतीति, पूर्वसरः। कर्त्तृ से अन्यत्र पूर्वं देशं सरतीति पूर्वसारः ॥ १०२५ ॥

१०२६–कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २० ॥

हेतु ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ गम्यमान और कर्म उपपद होंतो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो। हेतु (कारण)ताच्छील्य (तत्स्वभावता) आनुलोम्य (अनुकूलपन) हेतु, यशस्करी विद्या। शोककरी कन्या। दुःखकरं पापम्। ताच्छील्य, श्राद्धकरः। अर्थकरः। आनुलोम्य, वचनकरः। इन से अन्यत्र। कुम्भकारः। नगरकारः ॥ १०२३ ॥

---

* कुरु देश में भ्रमण करता है इस अर्थ की अपेक्षा में (कुरुषु चरति) यह विग्रह होता और अन्यदेश से कुरुदेश को प्राप्त होता है इस विवक्षा में (कुरूंश्चरति) यह विग्रह होता है ॥

१०२७—दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिविबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २१ ॥

दिवादिक शब्द उपपद हों तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो। दिवा करोति, दिवाकरः। विभां करोति विभाकरः। निशाकरः। प्रभाकरः। भास्करः। यहां (सन्धि०२०१) सत्व०। कारकरः। अन्तकरः। अनन्तकरः। आदिकरः। बहुकरः। संख्या से पृथक् बहु शब्द का ग्रहण बहुत्व की अपेक्षा से है। नान्दीकरः। किंकरः। लिपि लिबिएकार्थक हैं। लिपिकरः। लिबिकरः। बलिकरः। संख्या, एककरः। द्विकरः। त्रिकरः। जङ्घाकरः। बाहुकरः। अहस्करः। यत्करः। तत्करः। चोर अभिधेय हो तो तस्करः। होगा (सन्धि०२४८) से सुडागम और तलोप०। धनुष्करः। अरुष्करः। यहां (सन्धि० १९८) से षत्व०। किंयत्तद्बहुषु कृञोऽज् विधानम्॥ महाभाष्य ३ । २ । २१। पूर्वोक्त शब्दों में किं यद् तद् और बहु उपपद हों तो अच् प्रत्यय का विधान करना चाहिये। अन्यत्र ट होगा। किंकरा। यत्करा। किंकरी। तस्करी आदि ङीबन्त तो पुंयोग से होते हैं॥ १०२७॥

१०२८—कर्मणिभृतौ ॥ अ० ॥ ३ । २ २२ ॥

कर्म वाचक कर्म शब्द उपपद हो तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय हो। भृति (वेतन) कर्माणि करोति कर्मकरः। भृत्यः। भृति से अन्यत्र। कर्मकारः॥ १०२८॥

१०२९—न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २३ ॥

शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मंत्र, पद, ये उपपद हों तो कृञ् धातु से ट प्रत्यय न हो। हेत्वादि अर्थों में प्राप्त टप्रत्यय का प्रतिषेध है। शब्दकारः। श्लोककारः। कलहकारः। गाथाकारः। वैरकारः। चाटुकारः। सूत्रकारः। मन्त्रकारः। पदकारः॥ १०२९॥

१०३०—स्तम्बशकृतोरिन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २४ ॥

स्तम्ब और शकृत् उपपद हों तो कृञ् धातु से इन प्रत्यय हो। स्तम्बशकृतोर्व्रीहिवत्सयोः। महाभाष्य ३ । २ । २४ उक्त सूत्र में व्रीहि, वत्स और कहना चाहिये। स्तम्बकरिः। व्रीहिः। शकृत्करिः। वत्सः। अन्यत्र। स्तम्बकारः। शकृत्कारः॥ १०३०॥

१०३१–हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥अ० ॥ ३ । २ । २५ ॥

दृति और नाथ कर्म उपपदहों और पशु कर्त्ता हो तो हृञ् धातु से इन् प्रत्यय हो । दृतिं चर्ममयं पात्रं हरति दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरति, नाथहरिः । पशुः । अन्यत्र दृतिहारः । नाथहारः ॥ १०३१ ॥

१०३२—फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च । अ० ॥ ३ । २ । २६ ॥

फलेग्रहि और आत्मम्भरि ये दोनों शब्द निपातन हैं । फलानि गृह्णाति, फलेग्रहिः । यहां उपपद को एकार और धातु से इन् प्रत्यय निपातन है । भृञः कुक्ष्यात्मनोर्मुम् च । महाभाष्य० ३ । २ । २६ । भृञ् धातु से इन् प्रत्यय के विधान में कुक्षि और आत्मन् शब्द को मुम् आगम् निपातन होना चाहिये । कुक्षिंबिभर्त्ति, कुक्षिम्भरिः । आत्मम्भरिश्चरति यूथमसेवमानः । यहां चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से 'उदरम्भरिः, । यह भी निपातन जानना चाहिये ॥ १०३२ ॥

१०३३—छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २७

कर्म उपपद हो तो वेदविषय में वन, षण, रक्ष, मथे इन धातुओं से इन् प्रत्यय हो । ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम् । गोसनिं यौ पथि रक्षी श्वानौ । हविर्मथीनाम् ॥ १०३३ ॥

१०३४–एजेः खश् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २८ ॥

कर्म उपपद हो तो णिजन्त एजृ धातु से खश् प्रत्यय हो । जनान् एजयतीति । (जन—एजि—शप्—खश्=) यहां ॥ १०३४ ॥

१०३५—अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६७ ॥

खिदन्त उत्तर पद परे हो तो अरुष् द्विषत् और अव्ययभिन्न अजन्त शब्दों को मुमागम हो । मुम् होकर जन + म्—एज्—अ—अ=) जनमेजयः ॥ १०३५ ॥

१०३६–वा०–खश्प्रकरणे वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेट्तुदजहातिभ्यः ॥

खश् प्रत्यय के प्रकरण में वात शुनी तिल शर्द्ध ये यथाक्रम उपपद हों तो अज धेट् तुद और जहाति से खश् प्रत्यय का विधान करना चाहिये । वातमजाः । मृगाः । शुनीं धयति, यहां ॥ १०३६ ॥

१०३७–खित्यनव्ययस्य ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो तो अव्यय रहित पूर्वपद को ह्रस्व आदेश हो । शुनि-

धयः । तिलंतुदः । शर्द्धमपानशब्दं जहति—जाहयन्ति, शर्द्धञ्जहाः माषाः । यहां हा धातु अन्तर्भावित एयर्थ है ॥ १०३७ ॥

१०३८—नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । २९ ॥

नासिका और स्तन कर्म उपपद हों तो ध्मा और धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय हो । स्तने धेटः । नासिकायां ध्मश्च धेटश्च । महाभाष्य ३ । २ । २९ । स्तनं धयति स्तनन्धयः । नासिकन्धमः । नासिकन्धयः । स्त्रीलिङ्ग में । स्तनन्धयी । यहां धेट् के टित् से (स्त्रैणता०३५) से ङीप् प्रत्यय हो जाता है । सूत्र में बह्वच् भी नासिका शब्द का पूर्वनिपात अल्पाच्पूर्वनिपात के अनित्यत्व के लिये है ॥ १०३८ ॥

१०३९—नाडीमुष्ट्योश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३० ॥

नाडी और मुष्टि कर्म उपपद हों तो ध्मा और धेट् धातु से खश् प्रत्यय हो । यहां मुष्टि इस विसंज्ञकान्त का अपूर्व निपात है इस से संख्यातानुदेश नहीं होता है । नाडीं धयति, नाडिन्धयः । नाडीं धमति, नाडिन्धमः । मुष्टिन्धयः । मुष्टिन्धमः चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से वातन्धयः । वातन्धमः । पर्वतः । खारिंधयः खारिन्धमः । ये भी जानना चाहिये ॥ १०३९ ॥

१०४०—वा०—नासिकानाडीमुष्टिघटीखारीष्विति वक्तव्यम् ॥

घटिन्धयः । घटिन्धमः । खारिन्धयः । खारिन्धमः । नासिका, नाडी, मुष्टि शब्दों के विषय में उदाहरण दे चुके हैं ॥ १०४० ॥

१०४१—उदि कूले रुजिवहोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३१ ॥

कूलकर्म उपपद होतो उत्पूर्वक रुज और वह धातु से खश् प्रत्यय हो । कूलमुद्रुजतीति, कूलमुद्रुजोरथः । कूलमुद्वहः ॥ १०४१ ॥

१०४२—वहाभ्रे लिहः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३२ ॥

वह और अभ्र कर्म उपपद हों तो लिह धातु से खश् प्रत्यय हो । वहं स्कन्धं लेढीति, (वह—मुम्—लिह—शप्—खश्=) वहंलिहः । गौः । यहां अदादित्व से शप् का लुक् हो जाता है ॥ १०४२ ।

१०४३—परिमाणे पचः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३३ ॥

परिमाणवाचक कर्म उपपद हो तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो । प्रस्थंपचाति, प्रस्थं पचा स्थाली । द्रोणम्पचः । खारिम्पचः कटाहः ॥ १०४३ ॥

१०४४—मितनखे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३४ ॥

मित और नख ये कर्म उपपद हों तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो । मितम् पचति, मितम्पचा ब्राह्मणी । नखम्पचा यवागूः । यहां पच धातु ताप अर्थ वाचक है ॥१०४४॥

१०४५—विध्वरुषोः स्तुदः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३५ ॥

विधु और अरुष् कर्म उपपद हों तो तुद धातु से खश् प्रत्यय हो । विधुन्तुदः । अरूंषि मर्मस्थलानि तुदति अरुन्तुदः । यहां मुम् किये पीछे अरुष् के सकार को संयोगान्तलोप हो जाता है ॥ १०४५ ॥

१०४६—असूर्य्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ अ० ॥ ३ । २ ।३६॥

असूर्य्य और ललाट शब्द यथाक्रम से उपपद हों तो दृशि और तप धातु से खश् प्रत्यय हो । सूर्य्यं न पश्यन्ति, असूर्यंपश्याः राजदाराः । यहां नञ् का दृश से सम्बन्ध है इस से यह असमर्थ समास इसी (असूर्य्य) निर्देश से होता है । अनिवार्य्य सूर्य का भी दर्शन नहीं करने वाली राजदारा हैं। ललाटंतपः सूर्यः ॥ १०४६ ॥

१०४७—उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३७॥

उग्रम्पश्य, इरम्मद और पाणिन्धम ये शब्द निपातन किये हैं । उग्र शब्द यहां क्रियाविशेषण है । उग्रं यथा स्यात्तथा पश्यति, उग्रम्पश्यः । इरया जलेन माद्यति, इरम्मदः । पाणयो ध्मायन्तेऽस्मिन्निति, पाणिन्धमः पन्थाः । जो अन्धकारयुक्त मार्ग होता है उस में सर्पादिक क्षुद्र जीवों की निवृत्ति के लिये कभी हाथ से ताली भी देते हैं ॥ १०४७ ॥

१०४८-प्रियवशे वदः खच् ॥ अ० ॥ ३ । २ ३८ ॥

प्रिय और वश ये कर्म उपपद हों तो धातु से खच् प्रत्यय हो । प्रियं वदतीति, प्रियंवदः । वशंवदः ॥ १०४८ ॥

१०४९-वा०—खच्प्रकरणे गमेः सुपि उपसंख्यानम् ॥

खच् के प्रकरण में सुबन्त पूर्वक गम धातु से भी उपसंख्यान करना चाहिये । मितंगमो हस्ती । मितंगमा हस्तिनी ॥ १०४९ ॥

१०५०—वा०—विहायसो विह च ॥

इस प्रकरण में विहायस् शब्द जो गम धातु के पूर्व हो तो उस को विह आदेश भी हो । विहायसाकाशमार्गेण गच्छति, विहंगमः पक्षी ॥ १०५०

१०५१—वा०—खश्च डिच्च ॥

विहायस् शब्द को विह आदेश होने में गम से परे खच् प्रत्यय विकल्प करके डित्वत् हो । विहंगः ॥ १०५१ ॥

१०५२—वा०—डे च ॥

गम से ड प्रत्यय परे हो तो भी विहायस् को विह आदेश हो । विहगः । यहां गम धातु से (१०६९) इस से ड प्रत्यय होता है ॥ १०५२ ॥

१०५३—द्विषत्परयोस्तापेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३९ ॥

द्विषत् और पर कर्म उपपद हों तो णिजन्त तप धातु से खच् प्रत्यय हो । द्विषन्तं तपति, द्विषत्–ताप्–णिच्–खच् । इस व्यवस्था में ॥ १०५३ ॥

१०५४-खचि ह्रस्वः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९४ ॥

खच्परक णि परे हो तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्वादेश हो । इस से ह्रस्वादेश होकर द्विषन्तपः सिद्ध होता है । ऐसे ही । परन्तपः । द्विषतीं तापयति । यहां लिङ्गविशिष्टपरिभाषा का अनित्यत्व * मान कर खच् नहीं होता है । अथवा (द्विषत्परयोः) यहां द्विषत्कारक निर्देश मान कर तकारान्त द्विषत् शब्द का ग्रहण है ॥ १०५४ ॥

१०५५—वाचि यमो व्रते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४० ॥

व्रत (नियम) अर्थ में वाच् कर्म उपपद हो तो धातु से खच् प्रत्यय हो । वाचं यच्छति, वाच्–अम्–यम् –खच् । यहां ॥ १०५५ ॥

१०५६—वाचंयमपुरंदरौ च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६९ ॥

वाचंयम और पुरन्दर ये निपातन किये हैं । अर्थात् वाच् और पुर शब्द को अमन्तत्व निपातन है । इस से वाच् शब्द को अमन्तत्व हो कर । वाचंयमः । होता है । नियम से अन्यत्र असामर्थ्य से वचन न निकले वहां वाग्यामः होगा ॥ १०५६ ॥

१०५७—पूःसर्वयोर्दारिसहोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४१ ॥

पुर्, सर्व ये कर्म यथाक्रम से उपपद हों तो दारि, सह धातुओं से खच् प्रत्यय हो । पुरंदारयति, पुरन्दरः । यहां भी अमन्तत्व हो गया । सर्वंसहः कृत् संज्ञकों में (६१८) सूत्र के बहुल नियम से भगपूर्वक दारि धातु से भी खच् प्रत्यय होता है । भगन्दरः ॥ १०५७ ॥

---

* वा० नासिका नाडी० यहां घट शब्द के साथ घटी शब्द के ग्रहण से लिङ्गविशिष्टपरिभाषा अनित्य है ॥

१०५८–सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४२ ॥

सर्व, कूल, अभ्र, करीष ये कर्म उपपद हों तो कष धातु से खच् प्रत्यय हो । सर्वं कषति, सर्वंकषः खलः । कूलंकषा नदी । अभ्रंकषो गिरिः । करीषंकषा वात्या ॥ १०५८ ॥

१०५९–मेघर्त्तिभयेषु कृञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४३ ॥

मेघ, ऋति, भय ये कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से खच् प्रत्यय हो । मेघंकरः । ऋतिंकरः । भयंकरः । यहां भय शब्द के साथ तदन्तविधि भी है अभयंकरः ॥ १०५९ ॥

१०६०–क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४४ ॥

क्षेम, प्रिय, मद्र ये कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से अण् और खच् प्रत्यय हो । क्षेमं करोति, क्षेमकारः । क्षेमंकरः । प्रियकारः । प्रियंकरः । मद्रकारः । मद्रंकरः । यहां वा, ग्रहण करने से दूसरे पक्ष में (९८६) सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाता है फिर अण् ग्रहण हेत्वादिक अर्थों में जो कृञ् से ट प्रत्यय विहित है उस के बाधने के लिये है । क्षेमकरः । यह तो कर्म की शेषत्वविवक्षा मान कर कृञ् से पृथक् पचाद्यच् होता है ॥ १०६० ॥

१०६१–आशिते भुवः करणभावयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४५ ॥

आशित शब्द सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से करण और भाव में खच् प्रत्यय हो । करण, आशितो भवत्यनेनेति, आशितम्भव ओदनः । भाव, आशितस्य भवनं आशितंभवं वर्त्तते ॥ १०६१ ॥

१०६२–संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४६ ॥

कर्म वा अन्य सुबन्त उपपद हो तो भृ, तॄ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम इन धातुओं से खच् प्रत्यय हो । यहां यथासंभव कर्म और सुप् उक्त धातुओं से संबद्ध होते हैं । विश्वं बिभर्त्ति, विश्वम्भरा वसुन्धरा । रथेन तरति रथन्तरं साम । पतिंवरा कन्या । शत्रुंजयो हस्ती । युगन्धरः पर्वतः । शत्रुंसहः । शत्रुंतपः । अरिंदमः । संज्ञा ग्रहण से यहां न हुआ । कुटुम्बं बिभर्त्तीति, कुटुम्बभारः ॥ १०६२ ॥

१०६३–गमश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४७ ॥

सुबन्त उपपद हो तो संज्ञा में गम धातु से खच् प्रत्यय हो । सुतया गच्छति, सुतंगमः । पृथक् सूत्र उत्तरार्थ है ॥ १०६३ ॥

१०६४—अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥ अ०॥३।२।४८ ॥

अन्त, अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व, अनन्त ये कर्म उपपद हों तो गम धातु से ड प्रत्यय हो। अन्तगः। अत्यन्तगः। अध्वगः। दूरगः। पारगः। सर्वगः। अनन्तगः। यहां डकार टि लोप के लिये है इस से ड प्रत्यय के परे भसंज्ञा के विना भी टिलोप हो जाता है ॥ १०६४ ॥

१०६५—वा०—डप्रकरणे—सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ॥

गम धातु से डप्रत्यय के प्रकरण में सर्वत्र और पन्न शब्द का भी उपसंख्यान करना चाहिये। सर्वत्र गच्छति, सर्वत्रगः। पन्नं पतितं गच्छति पन्नगः ॥ १०६५ ॥

१०६६—वा०—उरसो लोपश्च ॥

ड प्रकरण में गम धातु से उरस् पूर्व हो तो उस के अन्त्य सकार का लोप भी हो। उरसा गच्छति, उरगः ॥ १०६६ ॥

१०६७—वा०—सुदुरोरधिकरणे ॥

सु और दुर् उपपद हों तो गम धातु से अधिकरण में ड प्रत्यय कहना चाहिये सुखेन गच्छत्यस्मिन्निति सुगः। दुःखेन गच्छत्यस्मिन्निति दुर्गो मार्गः ॥ १०६७ ॥

१०६८—वा०—निसो देशे ॥

देश अभिधेय हो तो निस् से परे गम धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये। निश्चयेन गच्छत्यस्मिन्निति निर्गो देशः ॥ १०६८ ॥

१०६९—वा०—अपर आह—डप्रकरणे अन्येष्वपि दृश्यते ॥

इस प्रकरण में और भी उपपद हों तो ड प्रत्यय देखा गया है। तत्रस्त्र्यगारगः, अश्नुते यावदध्याय 'ग्रामगः, ध्वंसते 'गुरुतल्पगः, ॥ १०६९ ॥

१०७०— आशिषि हनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४९ ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान और कर्म्म उपपद हो तो हन धातु से ड प्रत्यय हो। शत्रुं बध्यात् शत्रुहः। तव पुत्रो भूयात्। तिमिहः। आशीः से अन्यत्र शत्रुघातः॥१०७०॥

१०७१—वा०-दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ॥

संज्ञा विषय में दारु शब्द पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और अन्त्य को टकारादेश कहना चाहिये। दारु आहन्ति, दार्वाघाटः। दार्वाघाटस्तेवनस्पतीनाम्॥१०७१॥

१०७२–वा०– चारौ वा ॥

चारु शब्द उपपद हो तो आङ्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय नित्य और अन्त्य को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये। चार्वाघाटः। चार्वाघातः ॥ १०७२ ॥

१०७३–वा०–कर्मणि समि च ॥

कर्म्म उपपद हो तो सम्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और उस को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये। वर्णान् संहन्ति, वर्णसंघाटः। वर्णसंघातः। पदानि संहन्ति पदसंघाटः। पदसंघातः ॥ १०७३ ॥

१०७४–अपे क्लेशतमसोः ॥ अ० ॥ ३। २। ५० ॥

क्लेश, तमस्, कर्म उपपद हों तो अप पूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय हो। क्लेशमपहन्ति, क्लेशापहः पुत्रः। तमोपहन्ति तमोपहः सूर्यः ॥ १०७४ ॥

१०७५–कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥ अ० ॥ ३। २। ५१ ॥

कुमार और शीर्ष कर्म उपपद होंतो हन धातु से णिनि प्रत्यय हो। कुमारं हन्ति कुमारघाती। शीर्षघाती। यह शीर्ष शब्द शिरस् शब्द को शीर्ष भाव निपातन के लिये है ॥ १०७५ ॥

१०७६–लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥ अ० ॥ ३। २। ५२॥

जाया और पति ये कर्म उपपद हों और लक्षणवान् कर्त्ता अभिधेय होतो हन धातु से टक् प्रत्यय हो। जायां हन्ति जायाघ्नो ब्राह्मणः। पतिघ्नी वृषली ॥ १०७६ ॥

१०७७–अमनुष्यकर्तृके च ॥ अ० ॥ ३। २। ५३ ॥

कर्म उपपद हो तो मनुष्याभिन्न कर्त्ता में हन धातु से टक् प्रत्यय हो। जायां हन्ति, जायाघ्नस्तिलकालकः। पतिं हन्ति पतिघ्नी पाणिरेखा। शशघ्नी शकुनी। श्लेष्माणं हन्ति, श्लेष्मघ्नम् मधु। पित्तं हन्ति पित्तघ्नम्। घृतम्। अमनुष्यकर्तृक ग्रहण से यहां न हुआ। आखुघातः शूद्रः। नगरघातोहस्ती। यहां टक् प्रत्यय प्राप्त भी है तथापि कृत्संज्ञकों के बहुल भावसे कर्मोपपद लक्षण अण् होता है। प्रलम्बघ्नः। शत्रुघ्नः। कृतघ्नः। इत्यादिक, तो मूलविभुजादि क प्रत्यय से होते हैं ॥ १०७७ ॥

१०७८–शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ अ० ॥ ३। २। ५४ ॥

शक्ति गम्यमान हो और हस्ति, कपाट कर्म उपपद होंतो हन धातु से टक् प्र-

त्यय हो यह मनुष्यकर्तृक विषय के लिये सूत्र है । हस्तिनं हन्तुं शक्तः, हस्तिघ्नः । मनुष्यः । कपाटघ्नश्चोरः । शक्तिग्रहण से यहांन० । विषेण हस्तिनं हन्ति, हस्तिघातः । यहां अण् होता है ॥ १०७८ ॥

१०७९-पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ अ० ॥ ३ । २।५५॥

शिल्पी कर्त्ता अभिधेय होता पाणिघ,ताडघ ये दोनों शब्द निपातन हैं।पाणिं हन्ति पाणिघः । ताडघः । यहां पाणि और ताडकर्मोपपद हन धातु से टक् प्रत्यय के परे धातु की टि लोप और घकारादेश निपातन है ॥१०७९॥

१०८०-वा०-राजघ उपसंख्यानम् ॥

उक्त निपातनों में 'राजघ, यह भी उपसंख्यान करना चाहिये । राजानं हन्ति राजघः ॥१०८०॥

१०८१-आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५६ ॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय ये कर्म्म उपपद हों तो कृञ् धातु से करण में ख्युन् प्रत्यय हो।अनाढ्यमाढ्यमनेन कुर्वन्ति, आढ्यंकरणम् । सुभगंकरणम् । स्थूलंकरणम् । पलितंकरणम् । नग्नंकरणम् । अन्धंकरणम् प्रियंकरणम् । च्व्यर्थग्रहण से यहां न हुआ । आढ्यं घृतेन कुर्वन्ति घृतेनाभ्यञ्जयन्ति 'अच्वौ, यह प्रतिषेध आगे के लिये है क्योंकि यहां च्व्यन्त विषय में ख्युन् के प्रतिषेध में ल्युट् हो जायगा ल्युट् में समान रूप समान ही स्वर आदि कार्य हैं । आढ्यीं करणम् * ॥ १०८१ ॥

१०८२-कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥ अ० ॥ ३ । २।५७॥

च्विरहित च्व्यर्थ आढ्यादिक सुबन्त उपपद हों तो भू धातु से कर्त्ता में खि-

---

* ख्युनि प्रतिषेधानर्थक्यं ल्युट्ख्युनोरविशेषात् । ख्युनि च्वि प्रतिषेधोनर्थकः । किंकारणम्।ल्युट् ख्युनोरविशेषात् ख्युनामुक्तेल्युटा भवितव्यम् । नचैवास्तिविशेषः। च्विन्त उपपदे ख्युनो वा ल्युटो वा । तदेव रूपं स एव च स्वरः । महाभाष्य० ३ । २ । ५६ ॥ स्त्रीलिङ्ग में (स्त्रैण० ३६) ख्युन् प्रत्ययान्त से भी ङीप् हो जायगा । आढ्यं करणी । काशिकाकारने जो इस विषय में अर्थतः ल्युट् प्रत्यय का भी प्रतिषेध माना है सो असङ्गत है ॥

ष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय हों । अनाढ्य आढ्यो भवति, आढ्यम्भविष्णुः । आढ्यम्भावुकः । सुभगंभविष्णुः । सुभगंभावुकः । स्थूलंभविष्णुः । स्थूलंभावुकः । पलितंभविष्णुः । पलितंभावुकः । नग्नंभविष्णुः । नग्नंभावुकः । अन्धंभविष्णुः । अन्धम्भावुकः । प्रियंभविष्णुः । प्रियंभावुकः । कर्तृग्रहण से करण में नहीं होते हैं । च्व्यर्थ मात्र से अन्यत्र आढ्यो भविता । अच्विग्रहण से यहां न० । आढ्योभविता ॥ १०८२ ॥

१०८३–स्पृशोऽनुदके क्विन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५८ ॥

अनुदक सुबन्त उपपद हो तो स्पृश धातु से क्विन् प्रत्यय हो घृतं स्पृशति, घृतस्पृक् । मन्त्रेणस्पृशति, मन्त्रस्पृक् । जलेन स्पृशति, जलस्पृक् । अनुदकग्रहण से यहां न हुआ उदकस्पर्शः । कर्म की अनुवृत्ति नहीं है किन्तु निवृत हो गई ॥ १०८३ ॥

१०८४–ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चाञ्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५९ ॥

ऋत्विज्, दधृष्, स्रज्, दिश्, उष्णिज् ये क्विन् प्रत्ययान्त निपातन और अञ्चु युजि, क्रुञ्चु धातुओं से क्विन् प्रत्यय हो । ऋतौ यजति, ऋतुं यजति, वा ऋतुप्रयुक्तो यजति, ऋत्विक् । यहां ऋतु शब्दपूर्वक यज धातु से क्विन् प्रत्यय है । धृष्णोतीति, दधृक् । यहां ञिधृषा धातु से क्विन् प्रत्यय धातुद्विर्वचन और अन्तोदात्तत्व भी निपातन है । सृज्यते या सा स्रक् यहां स्रज से कर्म्म में क्विन् प्रत्यय और अमागम निपातन है दिश्यते जनैर्या सा दिक् । यहां दिश् से कर्म्म में क्विन है । ऊर्ध्वं स्निह्यति उष्णिक् । यहां उत्पूर्वक स्निह धातु से क्विन् षत्व और उपसर्गान्त लोप निपातन है । निपातनशब्दों के साथ जो अञ्चु आदि धातुओं से क्विन् का विधान किया है इस से उन में कुछ अलाक्षणिक कार्य भी होता है । जैसे सोपपद अञ्चु से क्विन् प्रकर्षेणाञ्चति, प्राङ् । प्रत्यङ् । उदङ् । युज् और क्रुञ्च् से निरुपपद से होता है । युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुञ्चः । यहां निपातन से न लोप नहीं होता । इन क्विन्प्रत्ययान्तों में (नाभि० ११५) से सर्वत्र पदान्त में कुत्व होता है ॥ १०८४ ॥

१०८५–त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६० ॥

त्यदादिक उपपद हों तो अनालोचन अर्थ में वर्तमान दृश धातु से कञ् और क्विन् प्रत्यय हों । तमिवेमं पश्यन्ति जनाः सोयं स इव दृश्यमानस्तमिवात्मानं पश्यति तादृक् । तादृशः । यादृक् । यादृशः । स्त्री, तादृशी । यादृशी । यहां (स्त्रैण० ३५)

सूत्र से ङीप् प्रत्यय हो जा० । अनालोचनग्रहण से यहां न हुआ । तं पश्यति तद्दर्शः । तादृगादिक शब्द रूढि शब्दों के समान हैं। दर्शनक्रिया के अर्थ को नहीं कहते हैं ॥ १०८५॥

१०८६—वा०—दृशेः समानान्ययोश्च ॥

समान और अन्य शब्द भी उपपद हों और अनालोचन गम्यमान हो तो दृश धातु से क्विन् और कञ् प्रत्यय हों। सदृक् । सदृशः । अन्यादृक् । अन्यादृशः ॥ १०८६ ॥

१०८७—सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६१ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो सदादिक धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो। द्विष के साहचर्य से अदादि षूङ् धातु का ग्रहण है । युज से युजिर् और युज दोनों का ग्रहण है। विद इस को अकारान्त पढ़ने से विद्ज्ञाने । विद् सत्तायाम् । विद विचारणे । इन तीनों का ग्रहण है किन्तु विद्लृ का नहीं है। सत, शुचिषत् । द्युषत् । पारिषत्। सू, वीरसूः । शतसूः । प्रसूः । द्विष, मित्रद्विट् । परिद्विट् । प्रद्विट् । द्रुह, मित्रध्रुक् । मित्रध्रुग् । प्रध्रुक् । दुह, गोधुक् । परिधुक् । युज्, अश्वयुक् । प्रयुक् । विद,वेदवित् । प्रवित् । ब्रह्मवित । भिद्, काष्ठभित् । प्रभित । छिद्, रज्जुच्छित् । प्रच्छित्। जि, शत्रुजित् । परिजित् । नी, सेनानीः । प्रणीः । ग्रामणीः । इत्यादिकों में स्रेण० (६६६) सूत्र में ग्रामणी शब्द के निर्देश को मान कर (८७०) से णत्व होजाता है । राज्, विराट् सम्राट् ॥ १०८७ ॥

१०८८—भजो ण्विः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६२ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भज धातु से ण्वि प्रत्यय हो। विश्वं भजति, विश्वभाक् । सुखभाक् । प्रभाक् ॥ १०८८ ॥

१०८९—छन्दसि सहः॥ अ० ॥ ३ । २ । ६३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो सह धातु से ण्वि प्रत्यय हो । तुराषाट्। यहां (८०६) से षत्व० ॥ १०८९ ॥

१०९०—वहश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६४ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो वह धातु से ण्वि प्रत्यय हो। प्रष्ठवाट् ॥१०९०॥

१०९१—कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६५ ॥

वेदविषय में कव्य, पुरीष, पुरीष्य ये उपपद हों तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो। कव्यवाहनः। पुरीषवाहनः। पुरीष्यवाहनः ॥ १०९१ ॥

१०९२–हव्येऽनन्तः पादम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६६ ॥

वेदविषय में हव्य शब्द उपपद हो तो वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय हो जो वह पाद के मध्य में न हो। अग्निश्च हव्यवाहनः। अनन्तःपादग्रहण से यहां न हुआ। हव्यवाडग्निरजरः पिता नः ॥ १०९२ ॥

१०९३–जनसनखनक्रमो विट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६७ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो जन आदि धातुओं से विट् प्रत्यय हो। जन, अब्जाः। गोजाः। सन, गोषा इन्द्रो नृषा असि। खन, बिसखाः। कूपखाः। क्रम, दधिक्राः। गम, अग्रेगा उन्नेतृणाम् ॥ १०९३ ॥

१०९४–अदोऽनन्ने ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६८ ॥

अद धातु से अन्नभिन्न सुबन्त हो तो विट् प्रत्यय हो। आममत्ति, आमात्। सस्यात्। अनन्नग्रहण से यहां न हुआ। अन्नादः ॥ १०९४ ॥

१०९५–क्रव्ये च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६९ ॥

क्रव्य शब्द उपपद हो तो अद धातु से विट् प्रत्ययहो क्रव्यात्। यहां भी पूर्व सूत्र से विट् प्रत्यय हो जाता फिर यह सूत्र असरूप प्रत्यय के बाधने के लिये है इस से क्रव्योपपद अद धातु से अण् प्रत्यय नहीं होता है ॥ १०९५ ॥

१०९६–दुहःकप्घश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७० ॥

सुबन्त उपपद हो तो दुह धातु से कप् प्रत्यय और धातु को घकारान्तादेश हो। कामान्दोग्धि, कामदुघा। अर्थदुघा ॥ १०९६ ॥

१०९७–मन्त्रेश्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७१ ॥

मन्त्र विषय में श्वेतवह, उक्थशस्, पुरोडाश इन से ण्विन् प्रत्यय हो। कर्तृवाचक श्वेत शब्दोपपद वह धातु से कर्मकारक में ण्विन् प्रत्यय हो। श्वेता यं वहन्ति स श्वेतवाः। कर्म्मवाचक वा करणवाचक उक्थ शब्द पूर्वक शंसु धातु से ण्विन्। उक्थानि शंसति उक्थैर्वा शंसति उक्थशाः। । पुरः पूर्वक दाशृ को डकारादेश कर्म्म में ण्विन्। पुरोदाशन्त इममिति पुरोडाः। इस विषय में पदान्त में (नामि० १२१, १२३) से डस् आदि कार्य होते हैं ॥ १०९७ ॥

१०९८—अवे यजः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७२ ॥

मन्त्रविषय में अव उपपद हो तो यज धातु से श्विन् प्रत्यय हो । अवयजति, अवयाः । त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि ॥ १०९८ ॥

१०९९—विजुपे छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७४ ॥

वेदविषय में उप उपपद होतो यज धातु से विच् प्रत्यय हो । उपयड्भीरूर्ध्वं वहन्ति यहां छन्दोग्रहण ब्राह्मण विषय के लिये भी है ॥ १०९९ ॥

११००—आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ॥ अ० ॥३।२।७३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो आकारान्त धातु से मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, विच्, प्रत्यय हों । मनिन्, शोभनं ददाति सुदामा । अश्वत्थामा । क्वनिप्, सुधीवा । सुपीवा । वनिप् । भूरिदावा । घृतपावा । विच्, कीलालपाः ॥ ११०० ॥

११०१—अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७५ ॥

आकारान्तों से अन्य धातुओं से भी मनिम्, क्वनिप्, वनिप् विच् प्रत्यय देखे जाते हैं ॥ ११०१ ॥

११०२—नेड्वशि कृति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८ ॥

वशादि कृत् संज्ञक प्रत्यय परे हो तो इट् न हो । इस से इट् का निषेध हो कर शोभनं शृणाति सुशर्म्मा । क्वनिप् प्रातरित्वा । प्रातरित्वानौ । वनिप् विजावा । अग्रे गावा । विच् रेडसि पर्णं नयेः । यहां अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है । इस से केवल से भी होता है । धीवा । पीवा ॥ ११०२ ॥

११०३—क्विप् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७६ ॥

धातु से क्विप् प्रत्यय हो ।उखायाः स्रस्यते उखास्रत्।पर्णध्वत्।वाहाद् भ्रस्यति वाहभ्रट् । यह क्विप् प्रत्यय सोपपद वा निरुपपद धातु से लोक वेद में सर्वत्र होता है ॥ ११०३ ॥

११०४—इस्मन्त्रन्क्विषु च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९७ ॥

इस् मन् त्रन् क्वि ये परे हों तो छादि धातु की उपधा को ह्रस्व आदेश हो । तनुं छादयति, तनुच्छत् । ज्वरतीति, जूः । जूरौ । जूरः । तूः । स्रूः । जनानवतीति, जनीः । जनावौ । जनावः । मवतीति मूः । यहां सर्वत्र (९५८) से ऊठ् । मूर्च्छति, मूः मुरौ । मुरः । धूर्वति, धूः । धुरौ । धुरः (५५९) से छ्व लोप० ॥ ११०४ ॥

११०५—गमः क्वौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४० ॥

क्वि परे हो तो गम के अनुनासिक का लोप हो । अङ्गान् गच्छति, अङ्गगत् । कश्मीरगत् । कलिङ्गगत् ॥ ११०५ ॥

११०६—वा०-गमादीनामिति वक्तव्यम् ॥

क्वि के परे गमादिकों के अनुनासिक का लो० । परितस्तनोतीति, परीतत् । परीतत्सह कुरिडक्रया । संयच्छतीति संयत् । शोभनं नमति, सुनत् ॥ ११०६ ॥

११०७—वा०— ऊङ् च ॥

लोपविषय में गमादिकों के अन्त्य को ऊङ् भी हो । अग्रे गच्छति अग्रेगूः । अग्रे भ्राम्यति, अग्रेभ्रूः ॥ ११०७ ॥

११०८—स्थः क च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७७ ।

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क और क्विप् प्रत्यय हो । शं सुखं यथास्यात्तथा तिष्ठति, शंस्थः । शंस्थाः । यद्यपि (क, क्विप्) प्रत्यय (१००२, १०१२) सत्रों से हो जाते । तथापि यह सूत्र बाधकों के बाधने के लिये है इस से 'शंस्थः, आदि में (१०१६) सूत्र से प्राप्त अच् को बाधता है ॥ ११०८ ॥

११०९--सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७८ ॥

अजातिवाची सुबन्तमात्र उपपद और ताच्छील्य अर्थ गम्यमान हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो । उष्णं भोक्तुं शीलमस्य, उष्णभोजी । शीतभोजी । कटुभोजी । मिष्टभोजी । न्यायकारी । उदासर्तुं शीलमस्या उदासारिणी । उदासारिण्यौ । उदासारिण्यः । प्रत्यासारिण्यः । अनुयायी । विसारी । अनुजीवी अजाति ग्रहण से यहां न हुआ । गवां दोग्धा । ताच्छील्य ग्रहण से यहां न हुआ । कदाचिन्न्यायं करोति ॥ ११०९ ॥

१११०--वा०—णिनिविधौ साधुकारिण्युपसंख्यानम् ॥

साधु करोति, साधुकारी । साधु, ददाति, साधुदायी ॥ १११० ॥

११११—वा०—ब्रह्मणि वदः ॥

ब्रह्म उपपद हो तो वद धातु से णिनि प्रत्यय हो । ब्रह्म वदति, ब्रह्मवादी । ब्रह्मवादिनो वदन्ति । उक्त दोनों वार्त्तिक ताच्छील्य से अन्यत्र के लिये हैं ॥ ११११ ॥

१११२—कर्त्तर्य्युपमाने ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७९ ॥

उपमानवाची कर्त्ता उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। उष्ट्र इव क्रोशति, उष्ट्रक्रोशी। ध्वाङ्क्षरावी। अताच्छील्यार्थ वा जात्यर्थ यह सूत्र है। कर्त्तृग्रहण से यहां न० अपूपानिव माषान् भक्षयति। उपमानग्रहण से यहां न०। उष्ट्रः क्रोशति॥ १११२॥

१११३-व्रते ॥ अ० ॥ ३। २। ८०॥

शास्त्रोक्त नियम गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। स्थण्डिलस्थायी। स्थण्डिलशायी। नियम से स्थण्डिल ही पर सोता है। व्रत ग्रहण से यहां न हुआ। कदाचित् स्थण्डिले शेते देवदत्तः। यह जाति के अर्थ वा ताच्छील्य से अन्य अर्थ में होने के लिये सूत्र है॥ १११३॥

१११४-बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥ अ० ॥। ३। २। ८१॥

आभीक्ष्ण्य (वार वार होना) अर्थ गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। कषायपायिणो गान्धाराः। क्षीरपायिण उशीनराः। सौवीरपायिणो बाल्हीकाः। बहुल ग्रहण से यहां न हुआ। कुल्माषखादः॥ १११४॥

१११५-मनः ॥ अ० ॥ ३। १। २। ८२॥

सुबन्त उपपद हो तो मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो। दर्शनीयं मन्यते, दर्शनीयमानी। शोभनमानी। बहुमानी। सामान्य मन् के ग्रहण से मन् मात्र का ग्रहण प्राप्त है तथापि पूर्व सूत्र से 'बहुल, शब्द की अनुवृत्ति कर के किसी मन् से णिनि नहीं भी होता इस से यहां मन्यति का ग्रहण है किन्तु तनादि मनु धातु का ग्रहण नहीं है॥ १११५॥

१११६-आत्ममाने खश्च ॥ अ० ॥ ३। २। ८३॥

आत्ममान (अपने को मानना) अर्थ गम्यमान हो तो मन् धातु से णिनि और खश् प्रत्यय हो। आत्मानं पण्डितं मन्यते, पण्डितंमन्यः। पण्डितमानी। आत्ममान ग्रहण से यहां दो प्रत्यय न हुए। विष्णुमित्रं पण्डितं मन्यते, पण्डितमानी॥ १११६॥

१११७-इचएकाचोम्प्रत्ययवच्च ॥ अ० ॥ ६। ३। ६८॥

खिदन्त उत्तरपद परे हो तो इजन्त एकाच् को अम् आगम हो और वह अम् विभक्ति के तुल्य हो। गांमन्यः। यहां (१११) से ओकार को आकारादेश०। स्त्रींमन्यः। स्त्रियंमन्यः। यहां (नामि० ९०) से इयङ् विक०। इज्ग्रहण से यहां न हुआ। त्वम्मन्यः। एकाज् ग्रहण से यहां न हुआ। लेखाभ्रंमन्यः॥ १११७॥

१११८-भूते ॥ अ० ॥ ३। २। ८४॥

यहां से जो प्रत्यय विधान करें सो भूत काल में हो। यह अधिकार वर्त्तमानाधिकार से पूर्व २ है ॥ १११८ ॥

१११९--करणे यजः॥ अ० ॥ ३ । २ । ८५॥

करण उपपद हो तो भूतकाल में यज धातु से णिनि प्रत्यय हो। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमेनायाक्षीत्, अयष्ट वा अग्निष्टोमयाजी। भूत काल से अन्यत्र अग्निष्टोमेन यजते ॥ १११९ ॥

११२०--कर्मणि हनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८६ ॥

कर्म उपपद हो तो हन धातु से भूतकाल में णिनि प्रत्यय हो। पितृव्यघाती। मातुलघाती। यहां से सह पर्यन्त कर्माधिकार है ॥ ११२० ॥

११२१--ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८७ ॥

ब्रह्मन्, भ्रूण, वृत्र ये कर्म उपपद हों तो भूतकाल में हन धातु से क्विप् प्रत्यय हो। ब्रह्माणमवधीत् ब्रह्महा। भ्रूणहा। वृत्रहा। धातु मात्र से क्विप् प्रत्यय का विधान कर चुके हैं इस से यह ब्रह्मादि विषयक क्विप् प्रत्यय नियमार्थ है। वह यहां दो प्रकार का नियम है। प्रथम भूतकाल में ब्रह्मादिक ही उपपद हों तो हन धातु से क्विप् हो अन्योपपद हो तो न हो इस से पुरुषं हतवान्। यहां क्विप् न०। दूसरा, भूतकाल में ब्रह्मादिक उपपद हों तो हन से क्विप् ही हो किन्तु और प्रत्यय न हो इस से वृत्रमवधीत् यहां कर्मोपपद अण् भी नहीं होता ॥ ११२१ ॥

११२२--बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८८ ॥

वेदविषय में कर्म उपपद हो तो हन धातु से बहुल करके क्विप् प्रत्यय हो। मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्। पितृहा। भ्रातृहा। कहीं नहीं भी होता अमित्रघातः ॥ ११२२ ॥

११२३--सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८९

स्वादिक कर्म उपपद हों तो कृञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो। शोभनं कृतवान् सुकृत्। कर्मकृत्। पापकृत्। मन्त्रकृत्। पुण्यकृत्। यहां तीन प्रकार का नियम है प्रथम, स्वादिक उपपद हों तो कृञ् से क्विप् ही हो और प्रत्यय न हो। इस से कर्म कृतवान्। यहां अण् नहीं होता। दूसरा स्वादिक उपपद हों तो कृञ् ही से क्विप् हो इस से। मन्त्रमधीतवान्, यहां क्विप् न०। स्वादिक उपपद हों तो भूतकाल ही में कृञ् से क्विप् हो अन्यकाल, में न हो। इस से मन्त्रङ्करोति करिष्यति

वा यहां क्विप् न० । स्वादिकों का नियम नहीं है इस से अन्योपपद में भी सामान्य क्विप् होता है । भाष्यकृत् । शास्त्रकृत् ॥११२३॥

११२४–सोमे सुञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९० ॥

सोम कर्म उपपद हो तो भूतकाल में षुञ् धातु से क्विप् प्रत्यय हो । सोमं सुतवान् सोमसुत् ॥११२४॥

११२५–अग्नौ चेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९१ ॥

अग्नि कर्म उपपद हो तो चिञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो । अग्निं चितवानग्निचित् । अग्निचितौ । अग्निचितः ॥११२५ ॥

११२६--कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९२ ॥

कर्म उपपद हो तो भूतकाल में चिञ् धातु से कर्म कारक में क्विप् प्रत्यय हो जो धातु उपपद और प्रत्यय के समुदाय से अग्न्याधारस्थल विशेष की आख्या पाई जाय । श्येन इव चितः श्येनचित् । कङ्कचित् । अग्नि के लिये जो ईंटों का चय के धरना है उस की संज्ञा है ॥११२६॥

११२७--कर्मणीनिर्विक्रियः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९३ ॥

कुत्सानिमित्तक कर्म उपपद हो तो विपूर्व डुक्रीञ् धातु से भूतकाल में इनि प्रत्यय हो सोमं विक्रीतवान् सोमविक्रयी । रसविक्रयी । कर्म वर्त्तमान था फिर कर्म ग्रहण शुद्ध कर्म से अन्य कर्म को ग्रहण करने के लिये है इस से यहां कुत्सानिमित्तक कर्म का ग्रहण होता है अतएव यहां न हुआ । धान्यविक्रायः ॥११२७ ॥

११२८--दृशेः क्वनिप् ॥ अ० ॥ । ३ । २ । ९४ ॥

कर्म उपपद हो तो दृश धातु से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो । पारं दृष्टवान् पारदृश्वा । मेरुदृश्वा ॥११२८॥

११२९--राजनि युधिकृञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९५ ॥

राजन् शब्द कर्म उपपद हो तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । यद्यपि युधि अकर्म्मक है तथापि अन्तर्भावितण्यर्थ मानकर सकर्मक हो जाता है । राजानं कृतवान् राजकृत्वा ॥११२९॥

११३०--सहे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९६ ॥

सह शब्द उपपद हो तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय हो। सहायौत्सीत् सहयुध्वा । सहाकार्षीत् सहकृत्वा ॥११३०॥

११३१--सप्तम्यां जनेर्डः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद हो तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय हो । उपसरे जातः उपसरजः । सरसिजः । यहां (सामा० तत्पुरुषे कृति०) सूत्र से सप्तमी का अलुक् भी होता है लुक पक्ष में । सरोजः ॥ ११३१ ॥

११३२--पञ्चम्यामजातौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९८ ॥

जातिभिन्न पञ्चम्यन्त उपपद हों तो जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो । संस्काराज्जातः संस्कारजः । पङ्कजः । दुःखजः । अजातिग्रहण से यहां न हुआ । हस्तिनो जातः । अश्वाज्जातः ॥ ११३२ ॥

११३३--उपसर्गे च संज्ञायाम् ॥ ३ । २ । ९९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय संज्ञाविषय में हो । प्रकर्षेण जाताः प्रजाः ॥ ११३३ ॥

११३४--अनौ कर्मणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०० ॥

कर्म उपपद हो तो अनूपसर्गपूर्वक जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय हो । रामनुजातो रामानुजः । भरतानुजः ॥ ११३४ ॥

११३५--अन्येष्वपि दृश्यते । अ० ॥ ३ । २ । १०१ ॥

अन्य भी उपपद हों तो भूत काल में जन धातु से ड प्रत्यय देखा जाता है । सप्तम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जैसे । नाजनीति, अजः । द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जाता द्विजाः । अजातिविषयक पञ्चम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जाति विषय में जैसे । ब्राह्मणजो धर्म्मः । क्षत्रियजं युद्धम् । वैश्यजो व्यापारः । उपसर्गोपपद से संज्ञा विषय में कहा है उस से अन्यत्र असंज्ञा में । अभिजाः । परिजाः केशाः । अनुपूर्वक से कर्मोपपद में कहा है अन्यत्र । अनुजातः । अनुजः । अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है इस से यहां भी होता है । परितः खाताः परिखा । आखा ॥ ११३५ ॥

११३६--क्तक्तवतू निष्ठा ॥ अ० ॥ १ । १ । २६ ॥

क्त क्तवतु ये निष्ठा संज्ञक हों ॥ ११३६ ॥

११३७--निष्ठा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०२ ॥

भूतकाल में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय हों । अकारीति कृतः । अकार्षीदिति कृतवान् । भुक्तम् । भुक्तवान् । यह क्त प्रत्यय कर्म्म (९१४) में और क्तवतु कर्त्ता (९१३) में होता है ॥ ११३७ ॥

११३८—निष्ठायामण्यदर्थे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६० ॥

ण्यदर्थ जो भावकर्म्म * उस से अन्य अर्थ (कर्त्ता आदि) में निष्ठा परे हो तो क्षि धातु को दीर्घादेश हो ॥ ११३८ ॥

११३९—क्षियो दीर्घात् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४६ ॥

क्षि धातु के दीर्घ से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो। अक्षैषीदिति, क्षीणवान्। भाव में क्षितमेनन । कर्म, क्षितः कामोनया ॥ ११३९ ॥

११४०--रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ॥अ०॥ ८।२।४२॥

रेफ और दकार से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश तथा उस निष्ठा से पूर्व धातु के दकार को भी नकारादेश हो। शीर्णः । विस्तीर्णम् । यहां० (२६५) सूत्र से ॠकार को इकारादेश (संधि० ५७) सूत्र से रपरत्व० । द, भिन्नः । भिन्नवान् रदग्रहण से यहां न हुआ । कृतः । कृतवान् । निष्ठाग्रहण से यहां न० । कर्त्ता । तग्रहण से यहां० । चरितम् । पूर्वग्रहण से पर को न हुआ । भिन्नवद्भ्याम् ॥११४०॥

११४१· संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥ अ० । ८ । २ । ४३ ॥

संयोगादि जो यण्वान् आकारान्त धातु उस से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । संस्त्यानः । ग्लानः । प्रद्राणः । संयोगादिग्रहण से यहां न० (यातः) यातवान् आद्ग्रहण से यहां न०। च्युतः । च्युतवान् । प्लुतः । प्लुतवान्। धातु ग्रहण से यहां न० । निर्यातः । यण्वद्ग्रहण से स्नातः । स्नातवान् । यहां न० ॥ ११४१ ॥

११४२--ल्वादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४४ ॥

लूनादिक धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । यहां क्र्यादिगणस्थ [लूञ्] छेदने से लेकर [व्री] गतौ इस धातु पर्यन्त धातुओं का ग्रहण है । उन

* ण्यत् कृत्य संज्ञक प्रत्यय हैं कृत्य प्रत्यय (९१४) सूत्र से भावकर्म्म में होते हैं इस से ण्यदर्थ भावकर्म्म है ।

में रेफ से परे नकारादेश पूर्व से भी सिद्ध है शेष धातुओं से अप्राप्त है लूनः। लूनवा-न्। धूनः। धूनवान् ॥ ११४२ ॥

११४३--वा०--दुग्वोर्दीर्घश्च ॥

दु और गु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश और उन को दीर्घ भी कहना चाहिये दु, आदूनः। गु, आगूनः ॥ ११४३ ॥

११४४--वा०--पूञो विनाशे ॥

विनाश अर्थ में वर्त्तमान पूञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो। पूनाः * यवाः। यव विनाश को प्राप्त हो गए। विनाशग्रहण से यहां न० पूतं धान्यम्। धान्य पवित्र है ॥ ११४४ ।

११४५--वा०--सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य ॥

जिस का ग्रास कर्म ही कर्त्ता हुआ हो उस षिञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो। असायि ग्रासः स्वयमेवेति सिनो ग्रासः स्वयमेव। ग्रास कर्म कर्तृ ग्रहण से यहां न०। सिता पाशेन सूकरी। फसरी से सूकरी आप ही बंधगई इस अपेक्षा में निष्ठा त,को, न न हुआ। ग्रास शब्द भी जब कर्म ही रहता तब निष्ठा त-कार को नकार नहीं होता है। सितो ग्रासो देवदत्तेन ॥ ११४५ ॥

११४६--ओदितश्च ॥ अ० ॥ ८। २। ४५ ॥

जिसका ओकार इत् संज्ञक हो उस से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। ओलजी, लग्नः। लग्नवान्। ओविजी, उद्विग्नः। उद्विग्नवान्। ओहाक्, प्रहीणः प्र-हीणवान् ॥ ११४६ ॥

११४७--द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः ॥ अ० ॥ ६। १। २४ ॥

निष्ठा परे हो तो द्रवमूर्त्ति (घृतादिपदार्थ का कड़ापन) और स्पर्श (लागना) अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो। स्पर्श, शीतं वर्त्तते। शीतो वायुः। द्रवमूर्त्ति में अगले सूत्र में उदाहरण देंगे। द्रवमूर्त्ति स्पर्श ग्रहण से यहां न० संश्यानो वृश्चिकः। सिमिटा हुआ बीछी है ॥ ११४७ ॥

---

* धातु अनेकार्थ होते हैं इस से ,,पूनाः यवाः, यहां पूञ् धातु विनाशार्थक है॥

११४८--श्योऽस्पर्शे ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४७ ॥

स्पर्श भिन्न अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। शीनं घृतम्। जमा घृत है अस्पर्श ग्रहण से यहां न हुआ। शीतो वायुः॥ ११४८॥

. ११४९--प्रतेश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २५ ॥

निष्ठा परे हो तो प्रति से परे श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो। प्रतिशीनः। प्रतिशीनवान्॥ ११४९॥

११५० विभाषाभ्यवपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २६ ॥

निष्ठा परे हो तो अभि अव पूर्वक श्यैङ् धातु को विकल्प करके संप्रसारण हो। अभिशीनम्। अभिश्यानम्। अवशीनम्। अवश्यानम्। द्रवमूर्त्तिस्पर्शविवक्षा में भी विकल्प होता है। अभिशीनम्। अभिश्यानम्। अवशीनम्। अवश्यानम् वा घृतम्। अभिशीतः। अभिश्यानः। अवशीतः। अवश्यानो वा वायुः। यह व्यवस्थित विभाषा है इस से अभि, अव और किसी के साथ में हों तो संप्रसारण नहीं होता। समवश्यानः। समभिश्यानः॥ ११५०॥

११५१--अञ्चोऽनपादाने ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४८ ॥

अनपादान में अञ्चु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो॥ ११५१॥

११५२--यस्य विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । १५ ॥

जिस धातु के विषय में कहीं विकल्प करके इट् कहा है उस से निष्ठा में इडागम न हो। सम्+अञ्चु+त=समक्तः। न्यक्तः। उदित् धातु से क्त्वा प्रत्यय को विकल्प करके इडागम कहेंगे इस से यहां इट् (४६) न हुआ। अनपादान ग्रहण से यहां न०। उदक्तमुदकं कूपात्॥ ११५२॥

११५३--दिवोऽविजिगीषायाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४९ ॥

अविजिगीषा (न जीतने की इच्छा) अर्थ में दिवु धातु से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो। आद्यूनः। अविजिगीषाग्रहण से यहां न०। द्यूतं वर्त्तते॥ ११५३॥

११५४--निर्वाणोऽवाते ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५० ॥

अवात अर्थ में निर्वाण यह निपातन है। निर्वाणोमुनिः। निवृत्त सुख को मुनि प्राप्त है यहां वात (पवन) से अन्य कर्त्ता में निस्पूर्वक वा धातु से निष्ठा तकार को नकारादेश होता है। वात में तो। निर्वातः। होगा॥ ११५४॥

११५५–शुषः कः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५१ ॥

शुष धातु से परे निष्ठा के तकार को ककारादेश हो । शुष्कः । शुष्कवान् । शुष्कवन्तौ ॥ ११५५ ॥

११५६–पचो वः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५२ ॥

पच धातु से निष्ठा तकार को वकारादेश हो । पक्वः । पक्ववान् ॥ ११५६ ॥

११५७–क्षायो मः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५३ ॥

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश हो । क्षामः । क्षामवान्॥११५७॥

११५८–स्त्यः प्रपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २३ ॥

निष्ठा परे हो तो प्र पूर्वक स्त्यै धातु को संप्रसारण हो ॥ ११५८ ॥

११५९–प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५४ ॥

प्रपूर्वक स्त्यै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश विकल्प करके हो । प्रस्तीमः । प्रस्तीमवान् । प्रस्तीतः । प्रस्तीतवान् ॥ ११५९ ॥

११६०–आदितश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । १६ ॥

आकार जिस का इत् संज्ञक हो उस से परे निष्ठा को इट् आगम न हो॥११६०॥

११६१–ति च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८९ ॥

तकारादि कित् परे हो तो चर, फल धातुओं के अकार को उकारादेश हो ॥११६१॥

११६२–अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ॥अ०॥८।२।५५॥

उपसर्ग से न परे हों तो फुल्ल, क्षीब, कृश और उल्लाघ ये निपातन हैं । फुल्लः । यहां [ञिफला] विशरणे धातु से निष्ठा के त को लत्व निपातन और (११६०) इट् निषेध तथा (११६१) से उकार होता है । इस धातु से निष्ठा को लकार एकदेश में भी इष्ट है । फुल्लवान् । [क्षीबृ]मदे क्षीबः मत्त का नाम है (कृश)तनूकरणे । कृशः । दुर्बलशरीर । उत् पूर्व [लाघृ] सामर्थ्ये से उल्लाघः नीरोग कहाता है । इन प्रयोगों में निष्ठा के तकार का लोप और उस के असिद्ध (सन्धि० ९४) होने से प्राप्त इट् का निषेध निपातन है । उपसर्ग से परे उक्त निपातन नहीं होते हैं जैसे प्रफुल्लः । प्रक्षीबितः । प्रकृशितः । प्रोल्लाघितः । प्रफुल्ल शब्द तो फुल्ल विकसने से (१७५) सूत्र से होगा ॥ ११६२ ॥

११६३वा०—उत्फुल्लसंफुल्लयोरिति वक्तव्यम् ॥

ञिफला धातु से निष्ठा तकार को नकारादेश विधान में उत्फुल्ल संफुल्ल इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये । उत्फुल्लः । संफुल्लः ॥ ११६३ ॥

११६४—नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ॥

अ० ॥ ८ । २ । ५६ ॥

नुद, विद, उन्द, त्रा, घ्रा, ह्री इन धातुओं से परे निष्ठा तकार और पूर्व दकार को नकारादेश विकल्प करके हो । नुद, नुन्नः । नुत्तः । विद, विन्नः । वित्तः । यहां रुधादि गणस्थ [विद] विचारणे । धातु का ग्रहण है । उन्दी, उन्द+त यहां॥११६४॥

११६५—श्वीदितो निष्टायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । १४ ॥

श्वि और ईदित धातु से परे निष्ठा को इट् आगम न हो । इस से इट् का निषेध हो कर उन्नः । उत्तः । त्रा, त्रातः । त्राणः । घ्रा, घ्राणः । घ्रातः । ह्रीणः । ह्रीतः॥११६५॥

११६६—न ध्याख्यापॄमूर्छिमदाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५७ ॥

ध्या ख्या पॄ मूर्छि मद इन से परे निष्ठा को नकारादेश न हो । ध्यातः । ध्यातवान् । ख्यातः । ख्यातवान् । पूर्तः । पूर्तवान् । मूर्त्तः (५५९) मूर्त्तवान् । मत्तः मत्तवान् ॥ ११६६ ॥

११६७-वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५८ ॥

भोग और प्रत्यय (प्रतीत) अर्थ में वित्त, यह निपातन हो । भोग, बहुवित्तम् अस्य । इस के बहुत धन है । सब प्रकार धन ही भोगते हैं इस से भोग अर्थ प्रकाशित होता है । प्रत्यय, वित्तोयं पुरुषः । पुरुष प्रतीत हुआ है । यहां विद्लृ का ग्रहण है । उक्त अर्थों से अन्यत्र विन्नः होगा । वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते विन्तेर्विन्नश्चवित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः । महाभाष्य ८ । २ । ५८ [विद] ज्ञाने से निष्ठान्त विदितः, और [विद] सत्तायाम् से निष्ठान्त विन्न तथा विद विचारणे से निष्ठान्त (११६४) विन्न, वित्त और भोग वा प्रत्यय में [विद्लृ] लाभे से वित्त इष्ट है । यहां कारिका में भोग उपलक्षण मात्र है इस से प्रत्यय का भी ग्रहण है ॥११६७॥

११६८–भित्तं शकलम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५९ ॥

शकल(टुकड़ा)वाच्य हो तो भित्त यह निपातन है । भिदिर्, भित्तम् । शकलम् । अन्यत्र भिन्नम् ॥ ११६८ ॥

११६९–ऋणमाधमर्ण्ये ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६० ॥

आधमर्ण्य (ऋण का लेना) अर्थ में ऋण यह निपातन हो । ऋणं धारयति यहां ऋ धातु से निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातन है । आधमर्ण्य ग्रहण से यहां न हुआ । ऋतं वक्ष्यामि । ऋणे अधमः, अधमर्णः अधमर्णस्य भावः आधमर्ण्यम् । ऋणमें जो लेनेवाला है वह अधम कहाता है यहां समास में सप्तम्यन्त ऋण शब्द का अपूर्वनिपात आधमर्ण्य,इस निर्देश को देख कर होता है तथा यह आधमर्ण्य उप लक्षण भी है इस से उत्तमर्ण, यह भी होता है ॥११६९॥

११७०–नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्त्तसूर्त्तगूर्त्तानि छन्दसि ॥ अ० ॥ ८। २ । ६१॥

वेदविषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त्त, सूर्त्त, गूर्त्त, ये निपातन हों । नसत्त मञ्जसा । निषत्तमस्य चरतः । इनमें नञ् और निपूर्वक सद् धातु से निष्ठातकार को नकारादेश का अभाव निपातन है लोक में असन्न, निषण्ण होंगे। अनुत्तमा ते मघवन् । यहां नञ् पूर्वक उन्दी से निष्ठा को नत्वाभाव नि० । अनुन्न यह लोक में होगा । प्रतूर्त्तं वाजिनम् । यहां त्वर वा तुर्वी धातु से निष्ठा को नत्वाभाव० । लोक में प्रतूर्णम् सूर्त्ता गावः । यहां सृ धातु से निष्ठा को नत्वाभाव० । लोक में । सृताः । गूर्त्ता अमृतस्य । यहां गूरी से निष्ठा को नत्वाभा० । लोक में गूर्णम् ॥११७०॥

११७१–स्फायः स्फी निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६। १ ।२२॥

निष्ठा परे हो तो स्फाय धातु को स्फी आदेश हो । स्फायी,स्फीतः । स्फीतवान् । निष्ठाग्रहण से यहां न० । स्फातिः । यह क्तिन् प्रत्ययान्त है ॥११७१॥

११७२–इण् निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४७ ॥

निर् से परे जो कुष धातु उस से निष्ठा परे हो तो उस को इडागम हो । निष्कुषितः ॥ ११७२॥

११७३–वसतिक्षुधोरिट् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५२ ॥

वस और क्षुध धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् का आगम हो । वस, उषितः । उषितवान् । क्षुधितः । क्षुधितवान् ॥११७३॥

११७४–अञ्चेःपूजायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५३ ॥

पूजार्थ में अञ्चु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम् हो । अञ्चिता अस्य गुरवः पूजा से अन्यत्र उदक्तमुदकं कूपात् ॥११७४॥

११७५–लुभो विमोहने ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५४ ॥

विमोहन (व्याकुल करना) अर्थ में वर्त्तमान् लुभ धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् आगम हो । विलुभितः । विलुभितानि पदानि । विमोहनग्रहण से यहां न हुआ । लुब्धो वृषलः ॥११७५ ॥

११७६–क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५० ॥

क्लिशू धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो । क्लिष्टः । क्लिष्टवान् । क्लिशितः । क्लिशितवान् । यहां [क्लिश] उपतापे और [क्लिशू] विबाधने इन दोनों का ग्रहण है ॥११७६॥

११७७–पूङश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५१ ॥

पूङ् धातु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम विकल्प करके हो । पू+इ+त । यहां ॥११७७॥

११७८–पूङःक्त्वा च ॥ अ० ॥ १ । २ । २२ ॥

पूङ् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा कित् न हो । पवितः । इट विकल्प में पूतः ॥११७८॥

११७९–निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः ॥
अ० ॥ १ । २ । १९ ॥

ञिष्विदा, ञिमिदा, ञिक्ष्विदा, ञिधृषा इन से परे सेट् निष्ठा कित् न हो । शीङ् शयितः । शयितवान् । यहां ङकारोच्चारण यङ्लुगन्त की निवृत्ति के लिये है । शेश्यितः । शेश्यितवान् ॥११७९॥

११८०-वा०-आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या॥

आदि कर्म (प्रथम क्रिया) में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय कहना चाहिये॥ ११८०॥

११८१-आदिकर्मणिः क्तः कर्त्तरि च॥ अ०॥३।४।७१॥

आदि कर्म्म में जो क्त प्रत्यय विहित है वह कर्त्ता और भावकर्म्म में हो॥ ११८१॥

११८२-विभाषा भावादिकर्मणोः॥ अ०॥७।२।१७॥

आकार जिस का इत् संज्ञक हो उस धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो निष्ठा उस को विकल्प करके इट् आगम न हो। प्रस्वेदितम् मैत्रेण। मैत्र ने प्रस्वेदक्रिया। प्रस्वेदितश्चैत्रः। चैत्र प्रथम प्रस्वेद को प्राप्त हुआ। प्रस्वेदितवान्। प्रमेदितम्। प्रमेदितः। प्रमेदितवान्। प्रक्ष्वेदितम्। प्रक्ष्वेदितः। प्रक्ष्वेदितवान्। प्रधार्षितम्। प्रधर्षितः। प्रधर्षितवान्॥ ११८२॥

११८३-मृषस्तितिक्षायाम्॥ अ०॥१।२।२०॥

मृष धातु से परे तितिक्षा (सहन) अर्थ में इट्सहित निष्ठा कित् न हो। मर्षितः। मर्षितवान्। तितिक्षाग्रहण से यहां न हुआ। अपमृषितं वाक्यम्। स्पष्टाक्षर वाक्य नहीं है॥ ११८३॥

११८४-उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम्॥ अ०॥१।२।२१॥

उकारोपध धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो सेट् निष्ठा सो विकल्प करके कित् न हो। प्रद्युतितम्। प्रद्योतितं वानेन। प्रद्योतितः। प्रद्युतितः साधुः। प्रमुदितम्। प्रमोदितमनेन। प्रमुदितः। प्रमोदितः साधुः। उदुपधग्रहण से यहां न हुआ। लिखितमनेन। विदितमनेन। भावादिकर्मग्रहण से यहां न हुआ। रुचितं कार्षापणं ददाति। सेट्ग्रहण से यहां न हुआ। प्रभुक्त ओदनः। यहां शब्विकरण धातुओं का ग्रहण इष्ट है शब् विकरणेभ्य एवेष्यते। महाभाष्य० १।२।२१। इस से यहां न हुआ। गुधितः गुधितवान्॥ ११८४॥

११८५-निष्ठायां सेटि॥ अ०॥६।४।५२॥

सेट्निष्ठा परे हो तो णि प्रत्यय का लोप हो। भावितः। भावितवान्। गुह, गूढः।

गूढवान् । वनु, वतः । तनु, ततः (३०३) पत्लृ, पतितः । यद्यपि पत् धातु को विकल्प करके इट् (५१८) से विहित है इस से निष्ठा में इट् निषेध (११५२) भी प्राप्त है तथापि (सामा०—द्वितीया०) सूत्र में पतित शब्द के ग्रहण से (पतित,) यहां इट्आगम (४६) होता है ॥ ११८५ ॥

११८६—क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताऽविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । १८ ॥

मन्थ, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश इन अर्थों में यथासंख्य करके क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये इट्रहित निपातन हैं [क्षुभ] संचलने क्षुब्धो मन्थः । मन्थ यह मथनिआ आदि जो मन्थनदण्ड हैं उन का नाम है । मंथ से अन्यत्र । क्षुभितम् [स्वन ध्वन] शब्दे स्वान्तं मनः । ध्वान्तं तमः । अन्यत्र । स्वनितम् । ध्वनितम् [लगे] संगे लग्नम् । सक्तम् । जो किसी में लग रहा है । यहां निष्ठा को नकारादेश भी निपातन है । अन्यत्र । लगितम् [म्लेच्छ] अव्यक्ते शब्दे म्लिष्टम् । अविस्पष्टम् । जो अच्छे प्रकार स्पष्ट न हो [रेभृ] शब्दे विरिब्धः । स्वरः । इन दोनों प्रयोगों में एकार को इकार भी निपातन है । अन्यत्र । म्लेच्छितम् । विरेभितम् [फण] गतौ फाण्टम् अनायाससाध्यं कषायम् । विना परिश्रम से सिद्ध होने वाले काढ़े को कहते हैं अर्थात् जो ओषधि पकाई वा पीसी न जाय किन्तु जल में भिगोने से उन से जो रस उत्पन्न हो और उस को पीछे से कुछ उष्ण कर लिया जाय वह अनायाससाध्य काढा फाण्ट कहाता है । अन्यत्र । फाणितम् [बाहृ] प्रयत्ने । बाढम् । भृशम् । अतिशय को कहते हैं अन्यत्र । बाहितम् ॥ ११८६ ॥

११८७—धृषिशसी वैयात्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । १९ ॥

निष्ठा परे हो तो वैयात्य (अविनय *) ही अर्थ में ञिधृषा और शसु अनिट् हों अन्यत्र न हों । ञिधृषा , अयं धृष्टः पुरुषः यह ढीठ पुरुष है । अयं विशस्तः पुरुषः । यह हिंसक पुरुष है । ञिधृषा, से निष्ठा को इट् निषेध (११६०) सूत्र

* विरूपं यातं गमनं चेष्टनं यस्य स वियातस्तस्य भावो वैयात्यमविनयः । जिस का विरूप गमन चेष्टा है वह वियात कहावे उस का होना वैयात्य अर्थात् अविनय कहाता है ॥

से सिद्ध तथा शसु, से (११५२) सूत्र से सिद्ध हैं इस से वैयात्य अर्थ में यह अनिट् विधान करना नियमार्थ है अर्थात वैयात्य ही अर्थ में धृषि, शसि अनिट् हों अन्यत्र न हों। वैयात्य से अन्यत्र धर्षितः। विशसितः॥ ११८७॥

११८८–दृढः स्थूलबलयोः॥ अ०॥ ७। २। २०॥

स्थूल और बलवान् ये अर्थ वाच्य हों तो दृढ, यह निपातन है। दृढः स्थूलः। दृढो बलवान्। यहां [दृह, दृहि] वृद्धौ इन दोनों धातुओं से क्त प्रत्यय को इट् का अभाव और ढकारादेश तथा धातु के हकार का लोप और दृहि के इदित्भाव से (१२७) हुए नकार का लोप निपातन है स्थूल और बल से अन्यत्र दृहितः। दृंहितः॥ ११८८॥

११८९–प्रभौ परिवृढः॥ अ०॥ ७। २। २१॥

प्रभु वाच्य हो तो परिवृढ यह निपातन है। परिवृढः कुटुम्बी। यहां [वृह, वृहि] वृद्धौ इन से दृढ शब्द के तुल्य समस्त कार्य होते हैं। प्रभु अर्थ से अन्यत्र। परिवृहितः परिवृंहितः॥ ११८९॥

११९०–कृच्छ्रगहनयोः कषः॥ अ०॥ ७। २। २२॥

कृच्छ्र (दुःख वा दुःख का निमित्त) और गहन (सघन) अर्थ में कष धातु से निष्ठा को इडागम न हो। कष, कष्टं दुःखम्। कष्टो रोगः। दुःख तथा दुःख का निमित्त रोग आदि कष्ट कहाता है। गहन, कष्टाः पर्वताः। कष्टानि वनानि। कृच्छ्रगहन से अन्यत्र। कषितं सुवर्णम्॥ ११९०॥

११९१–घुषिरविशब्दने॥ अ०॥ ७। २। २३॥

निष्ठा परे हो तो अविशब्दन (विशब्दन प्रतिज्ञा उस से अन्य) अर्थ में घुषिर् धातु अनिट् हो। घुष्टा रज्जुः। अविशब्दनग्रहण से यहां न हुआ। अवघुषितं वाक्यमाह अर्थात् प्रतिज्ञातवाक्य कह रहा है। चुरादिगणस्थ घुषिर धातु से*जो णिच् होता है उस की अनित्यता में अविशब्दन निषेध ज्ञापक है॥ ११९१॥

*घुषिर् धातु पिछले दो गणों में पढ़ा है अर्थात् भ्वादिगण में (घुषिर्) अविशब्दने तथा चुरादिगण में (घुषिर् विशब्दने) इनदोनों में से अविशब्दन अर्थ में निष्ठा के परे घुषिर् धातु अनिट् है। विशब्दन में अनिट् नहीं है। यहांयहशंका है कि विशब्दन में इट् निषेध क्यों किया अर्थात् विशब्दमें चुरादिणिच् हो कर घोषि हो जाता है किन्तु घुष नहीं रहता है इस से (अविशब्दने)यह ज्ञापक है कि चुरादिणिच् उक्त धातु से अनित्य है॥

११९२-अर्द्देः सन्निविभ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २४ ॥

सम् नि वि इन से परे जो अर्द्द धातु उससे परे निष्ठा को इट् आगम न हो । समर्णः (११४०) न्यर्णः । व्यर्णः । अर्द्दग्रहण से यहां न० । समेधितः । सन्निविग्रह० । अर्द्दितः । यहां न हुआ ॥११९२॥

११९३-अभेश्चाविदूर्य्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । २५ ॥

आविदूर्य्य (जो बहुत दूर न हो वा अतिसमीप हो उस) अर्थ में अभि से परे जो अर्द्द धातु उस से परे निष्ठा को इट् न हो । अभ्यर्णम् (११४०) अन्यत्र । शीतेनाभ्यर्द्दितोवृषभः । वृषभ शीत से पीडित हो रहा है ॥११९३ ॥

११९४-णेरध्ययने वृत्तम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । २६ ॥

अध्ययन अर्थ में ण्यन्त वृतु धातु से निष्ठा को इट् का अभाव और णिच् का लोप निपातन है । वृत्तं व्याकरणमनेन । इस ने व्याकरण का संपादन कर लिया अध्ययन से अन्यत्र । वर्त्तिता रज्जुः । वर्त्तीहुई डोरि है

११९५-शृतं पाके ॥ अ० ॥ ६ । १ । २७ ॥

क्तप्रत्यय के परे पाक अथ में णिजन्त वा णिच् रहित श्रा धातु को शृभाव निपातन है ॥ ११९५ ॥

११९६-वा०-क्षीरहविषोरिति वक्तव्यम् ॥

उक्त शृभाव क्षीरहविर्विषयक पाक अर्थ में कहना चाहिये [श्रा] पाके शृतं क्षीरं स्वयमेव । शृतं हविः स्वयमेव । णिजन्त, शृतं क्षीरं देवदत्तेन । अन्यत्र श्राणा (११४१) श्रपिता वा यवागूः । श्रा धातु अकर्मक है इससे कर्मकर्तृ विषयक पच धातु के अर्थ में वर्त्तमान है णिजन्त श्रा धातु से फिर प्रयोजकव्यापार में णिच् किया जाय जैसे (श्रा+पुक्+ णिच्+णिच्+क्त+सु=) यहां ॥ ११९६ ॥

११९७-वा०-श्रपेः शृतमन्यत्र हेतोरिति वक्तव्यम् ॥

णिजन्त श्रा (श्रपि) धातु से जो हेतु अर्थात् प्रयोजक व्यापार उस से अन्यत्र शृभाव निपातन करना चाहिये । शृभाव का निषेध होकर । अश्रापि क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन, श्रपितं क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेति ॥ ११९७ ॥

११९८-वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टछन्नज्ञप्ताः॥अ०॥७।२।२७॥

णिच् विषय में दान्त,शान्त, पूर्ण दस्त स्पष्ट छन्न ज्ञप्त ये विकल्प करके निपातन

हैं। दमु, दान्तः (५८७) पक्ष में दमितः। शमु, शान्तः। शमितः। पूरी पूर्णः। पूरितः। दसु, दस्तः। दासितः। स्पश, स्पष्टः। स्पाशितः। छद, छन्नः। छादितः। इन दान्तादिकों में णिलुक् और इट् का अभाव निपातन हैं। ज्ञप, ज्ञप्तः। ज्ञपितः। ज्ञप्त, का ग्रहण विकल्पार्थ इट् विधान के लिये है क्योंकि ज्ञप से (५१४) सूत्र से इट् विकल्प विधान हैं इस से (११५२) सूत्र से नित्य इट् प्रतिषेध प्राप्त है ॥११९८॥

११९९-रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ॥ अ० ॥ ७। २। २८ ॥

रुष अम त्वर संघुष् आस्वन इन धातुओं से निष्ठा को इट् आगम विकल्प करके हो। रुष, रुष्टः। रुषितः (२१२) से इट् विकल्प (११५२) सूत्र से निषेध प्राप्त था अम, आन्तः (५८७) अमितः। ञित्वरा, तूर्णः (११६०) इट् प्रतिषेध प्राप्त था। समघुषिर्, संघुषितः। आस्वन, आस्वान्तः। आस्वनितः ॥ ११९९ ॥

१२००-हृषेर्लोमसु ॥ अ० ७। २। २९ ॥

लोम विषय में वर्त्तमान हृष धातु से परे निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो ॥ १२०० ॥

१२०१-वा०-हृषेर्लोमकेशकर्त्तृकस्येति वक्तव्यम् ॥

उक्त इट् विकल्प लोम और केश कर्त्तृक हृष धातु से कहना चाहिये। हृष्टानि लोमानि। हृषितानि लोमानि। हृष्टं लोमभिः। हृषितं लोमभिः। हृष्टाः केशाः। हृषिताः केशाः। हृष्टं केशैः हृषितं केशैः [हृषु] अलीके तथा [हृष] तुष्टौ दोनों का ग्रहण है। उन में हृषु उदित् होने से निष्ठा में (११५२) अनिट तथा हृष सेट् है। लोम से अन्यत्र हृषु, हृष्टो देवदत्तः। हृष, हृषितो देवदत्तः ॥ १२०१ ॥

१२०२-वा०-विस्मितप्रतिघातयोरिति वक्तव्यम् ॥

विस्मित (विस्मय को प्राप्त) प्रतिघात (ताडना को प्राप्त) इन अर्थों में हृष् धातु से इट् विकल्प करके कहना चाहिये। विस्मित, हृष्टो देवदत्तः। हृषितो देवदत्तः। प्रतिघात, हृष्टा दन्ताः। हृषिता दन्ताः ॥ १२०२ ॥

१२०३-अपचितश्च ॥ अ० ॥ ७। २। ३० ॥

अपचित यह विकल्प करके निपातन है। अपचितः। अपचायितो वानेन गुरुः। इस ने गुरु सत्कार युक्त किया। यह अपपूर्वक चायृ धातु से निष्ठा को इट् अभाव और धातु को चिभाव निपातन है ॥ १२०३ ॥

१२०४—प्यायः पी ॥ अ० ॥ ६ । १ । २८ ॥

निष्ठा परे हो तो ओप्यायी धातु को विकल्प करके पी आदेशहो [ओप्यायी] वृद्धौ । पीनं मुखम् । पीनमुरः ॥ १२०४ ॥

१२०५—वा० —आङ्पूर्वादन्धूधसोः ॥

आङ्पूर्वक ओप्यायी धातु से निष्ठा परे हो तो उस धातु को पी आदेश कहना चाहिये । आपीनोऽन्धुः । आपीनम् ऊधः । पूर्वसूत्र से सर्वत्र पी आदेश सिद्ध है फिर भी जो (आङ्पूर्व०) इत्यादि विधान है सो नियमार्थ है अर्थात् आङ् पूर्वक से निष्ठा के परे अन्धु और ऊधस् ही वाच्य हों तो (पी) आदेश हो अन्यत्र न हो । आप्यानश्च-न्द्रमाः। तथा यह उभयतो नियम भी है अन्धु ऊधस् वाच्य हों तो आङ्पूर्वक ही से निष्ठा के परे पी आदेश हो । अन्यपूर्व से न हो । प्रप्यानोन्धुः । प्रप्यानमूधः ॥ १२०५ ॥

१२०६—ह्लादो निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९५ ॥

निष्ठा परे हो तो ह्लाद अङ्ग को ह्रस्वादेश हो । प्रह्लन्नः । प्रह्लन्नवान् । निष्ठा ग्रहण से यहां न हुआ । प्रह्लादयति ॥ १२०६ ॥

१२०७-द्यतिस्यतिमास्थामित्तिकिति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४० ॥

तादि कित् परे हो तो द्यति, स्यति, मा, स्था इन अङ्गों को इकारादेश हो । द्यति [दो] अवखण्डने । दितः । दितवान् । स्यति, [षो] अन्तकर्मणि । सितः । सितवान् मा, [मा] माने [माङ्] माने [मेङ्] प्रणिदाने । मितः । मितवान् । स्था, [ष्ठा] गति-निवृत्तौ । स्थितः । स्थितवान् ॥ १२०७ ॥

१२०८—शाछोरन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४१ ॥

तादि कित् परे हो तो शा, छा अङ्गों को इकारादेश विकल्प कर के हो । निशि-तम् । निशातम् । निशितवान् । निशातवान् । अवच्छितम् । अवच्छातम् । अवच्छित-वान् । अवच्छातवान् । यह व्यवस्थित विभाषा है इस से व्रतविषय में श्यति को नित्य इकारादेश होता है । संशितं व्रतम् । सम्यक् प्रकार से संपादन किया व्रत है । संशितो ब्राह्मणः । व्रतविषयक यत्नवान् ब्राह्मण है ॥ १२०८ ॥

१२०९--दधातेर्हिः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४२ ॥

तादि कित् परे हो तो डुधाञ् धातु को हि आदेश हो । अभिहितम् । निहितम् विहितम् ॥ १२०९ ॥

१२१०—सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४५ ॥

वेदविषय में सुधित, वसुधित, नेमधित धिष्व, धिषीय ये निपातन हैं । गर्भं माता सुहितम् वसुधितमग्नौ जुहोति । नेमधिता बाधन्ते । इन में सु, वसु, नेमपूर्वक [डुधाञ्]धातु को इकारादेश निपातन है लोक में । सुहित,वसुहित नेमहित होगा । धिष्वसोमम् सुरेता रेतो धिषीय । इन दोनों में डुधाञ् को इत्व वा प्रत्यय को इडागम निपातन है (धिष्व) लोट् मध्यमैकवचन में ह लोक में (धत्स्व) होता तथा (धिषीय) आशीर्लिङ् के उत्तमैकवचन में है लोक में (धासीय) होता है ॥ १२१० ॥

१२११-दो दद् घोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४६ ॥

तादि कित् परे हो तो घु संज्ञक दा धातु को दथ् आदेश हो । डुदाञ् दत्तः । दत्तवान् । दाग्रहण से यहां न हुआ । धेट्, पाने धीतः । धीतवान् । यहां (३४१) ईकारादेश० । घुग्रहण से यहां न० । दैप् शोधने । अवदातम् मुखम् । उक्त आदेश को दत्, दद्, दध्, दथ् इन में कौन सा मानना चाहिये ॥ १२११ ॥

१२१२—का०—तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद् दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् । धान्ते दोषो धत्वप्राप्ति स्थान्तेऽदोषस्तस्मात्थान्तः ॥

यदि उस को तान्त अर्थात् (दत्) माने तो विदत्त, यहां अगले (१२१५) सूत्र से उपसर्ग के इक् को दीर्घादेश * प्राप्त है । दान्त (दद्) माने तो [दद्+त+सु=] दत्त यहां [११४०] सूत्र से निष्ठा को तथा पूर्व द को नकारादेश प्राप्त है । धान्त [दध्] माने तो (१४१) सूत्र से निष्ठा तकार को धकार प्राप्त है इस से थान्त [दथ्] मानना चाहिये क्योंकि थान्त में दोष नहीं है उपसर्ग से परे [प्र+दा+त+-सु=] यहां ॥ १२१२ ॥

१२१३—अच उपसर्गात्तः ॥ ७ । ४ । ४७ ॥

अजन्त उपसर्ग से परे घु संज्ञक दा धातु को त आदेश हो । आदेश होकर

---

* (दस्ति) इस सूत्र का जब यह अर्थ हो कि डुदाञ् धातु का जो तकारान्त आदेश उस के विषय में इगन्तोपसर्ग को दीर्घ हो । तब दीर्घादेश प्राप्त है।

दान्त धान्त पक्ष में भी पारिभाषिकस्थ सन्निपात परिभाषा के विरोध से दत्व धत्व नहीं प्राप्त हैं ।

(प्रद्त्त+त+सु=) प्रत्तम् । अवत्तम् ॥ १२१३ ॥

१२१४--का०--अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि ।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥

• अवदत्त, विदत्त, आदिकर्म में प्रदत्त, सुदत्त, अनुदत्त तथा निदत्त ये भी इष्ट हैं अर्थात् इन सभों में दा को तकारादेश प्राप्त है सो न हुआ किन्तु दथ् आदेश होता है (चेष्यते) यहां चकारग्रहण से यह जानना चाहिये कि एक पक्ष में तकार आदेश होता भी है ॥ १२१४ ॥

१२१५--दस्ति ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२४ ॥

डुदाञ् धातु का जो तकारादि आदेश सो परे हो तो इगन्त उपसर्ग को दीर्घादेश हो । नीत्तम् । वीत्तम् । परीत्तम् । इन में दा के आकार के स्थान में यद्यपि (१२१३) त आदेश होता है तथापि (सं०३०२) सूत्र से पूर्व द् को चर हो कर तकारादि आदेश हो जाता है । आश्रयात्सिद्धत्वं भविष्यति । महाभाष्य ६ । ३।१२४ । चर्त्वके आश्रय से चर का सिद्धभाव हो जायगा अर्थात् (दस्तियहां) जो तकारादि का आश्रय किया है इस से चर् (संधि० ९४) असिद्ध नहीं होगा ॥ १२१५ ॥

१२१६–अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति ॥ अ० ॥ २ । ४।३६ ॥

ल्यप् और तादि कित् परे हो तो अद् धातु को जग्धि आदेश हो । अद, जग्धः । जग्धवान् । यहां क्त प्रत्यय के परे अद को जग्धि आदेश, इकारेत् (नामि० १३) संज्ञा, निष्ठा तकार को (१४१) धकार और पूर्व धकार का (सं०३१०) लोप् हो जाता है । स कटं प्रकृतः । प्रकृतः कटस्तेन । यहां (११८१) सूत्र से आदि कर्म विषयक क्त प्रत्यय कर्त्ता में होता है । तथा । प्रक्षीणः तपस्वी । यहां भी कर्ता में होता और (११३८) क्षि धातु को दीर्घ (११३९) सूत्र से निष्ठा को नत्वादेश होता है ॥ १२१६ ॥ ॥

१२१७ – वाक्रोशदैन्ययोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६१

भाव कर्म से अन्य अर्थ में निष्ठा परे हो तो आक्रोश (कोशना) और दैन्य (दीनता) अर्थ में क्षि धातु को विकल्प करके दीर्घादेश हो आक्रोश, क्षीणायुर्भव । यहां क्षि को दीर्घादेश होकर (११३९) निष्ठा को नत्व हो जाता है द्वितीय पक्ष में । क्षितायुर्भव । दैन्य, क्षितः क्षीणोयं वा तपस्वी ॥ १२१७ ॥

१२१८-वा०-निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥

षत्वविधि, स्वरविधि, प्रत्ययविधि, तथा इड्विधि में निष्ठादेश सिद्ध है यह कहना चाहिये । ष,वृक्णः। वृक्णवान्। यहां (११४६) निष्ठा को नकारादेश उस के असिद्ध (सं० ६४) होने से च् को (२३३) सूत्र से षत्व प्राप्त है सो नकारादेश के सिद्ध होने से झल के अभाव से नहीं होता किन्तु (सं०१६१) कुत्व होता है स्वर आदि विषयों की आवश्यकता न होने से उन के उदाहरण नहीं दिये॥ १२१८

१२१९-गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७२ ॥

गति जिनका अर्थ है उनसे तथा अकर्मक, श्लिष शीङ्, स्था, आस, वस, जन रुह,जॄष् इनधातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय सो कर्ता और यथाप्राप्त भाव कर्म में हो। गत्यर्थ, गम्लृ, ग्रामं गतो देवदत्तः । ग्राम को देवदत्त गया । गतो ग्रामो देवदत्तेन । देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ । अकर्मक, ग्लै, ग्लानो देवदत्तः । ग्लानं देवदत्तेन । श्लिष लक्ष्मीम् आश्लिष्टो विष्णुः । आश्लिष्टा लक्ष्मी विष्णुना । शीङ् खट्वामधिशयितः । खट्वाधिशयिता । स्था गुरुमुपस्थितः। गुरुरुपस्थितस्तेन । आस, उपासितः परमेश्वरं भवान् । उपासितः परमेश्वरो भवता । वस, गुरुमनूषितो भवान् । अनूषितो गुरुर्भवता। जन, राममनुजातो लक्ष्मणः । अनुजातो लक्ष्मणेन रामः । रुह, अश्वमारूढोदेवदत्तः आरूढोऽश्वो देवदत्तेन । जॄष, शुनीमनुजीर्णः श्वा । शुनानुजीर्णा शुनी । उक्त प्रयोगों में (६१४) सूत्र से प्राप्त भावकर्म में भी (क्त) होता है श्लिष आदि अकर्मक भी हैं तथापि सोपसर्ग सकर्मक होजाते हैं इस से इन का ग्रहण है ॥ १२१९ ॥

१२२०-क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७६ ॥

ध्रौव्य (स्थिरता) गति (गमन) और प्रत्यवसान (भक्षण) अर्थ वाले धातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय सो अधिकरण और यथाप्राप्त भाव कर्म में हो । ध्रौव्यार्थक अकर्मक हैं उन से कर्त्ता, भाव, अधिकरण में गत्यर्थकों से कर्त्ता, कर्म, अधिकरण में तथा प्रत्यवसानार्थकों से कर्म और अधिकरण में क्त होता है । ध्रौव्यार्थ, आसितो देवदत्तः । आसितं मुकुन्देन । आसितम् मुकुन्दस्य वा । गत्यर्थ, देवदत्तो ग्रामं गतः । गतो देवदत्तेन ग्रामः । देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ है। गतं देवदत्तस्य । यहां देवदत्त का गमन

हुआ है प्रत्यवसानार्थ,भुक्त ओदनो देवदत्तः । देवदत्तस्य भुक्तम् । उक्त उदाहरणों में (१९४,१८६) सूत्रों के अनुसार कर्म और कर्त्ता में भी क्त प्रत्यय होता है ॥१२२०॥

१२२१-ञीतः क्तः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८७ ॥

ञि जिस का इत्संज्ञक हो उस से वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय हो । ञिदिविदा दिवरणः । दिवरणवान् ॥ १२२१ ॥

१२२२-मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २।१८८ ॥

मति (इच्छा) बुद्धि (ज्ञान) पूजा (सत्कार) इन अर्थों वाले धातुओं से वर्त्तमान काल में क्त प्रत्यय हो । राज्ञां मतः । राज्ञामिष्टः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां ज्ञातः राज्ञां पूजितः । राज्ञामर्चितः । (राज्ञाम्) यह षष्ठी (का० १२०) से होती है । चकार अनुक्त शब्दों के संग्रह करने के लिये है इस से अगले प्रयोग भी जानने चाहिये ॥ १२२२ ॥

१२२३--का० शीलितो रक्षित क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि ॥
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ॥ १ ॥
हृष्टतुष्टौ तथा क्रान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ॥
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः ॥ २ ॥

शीलित, रक्षित, क्षान्त, आक्रुष्ट, जुष्ट, रुष्ट, रुषित, अभिव्याहृत, हृष्ट, तुष्ट क्रान्त तथा संयत उद्यत ये भी वर्तमान काल में जानने चाहिये । 'कष्ट, इस शब्द को भविष्यत्काल में कहते हैं और अमृत शब्द का पूर्ववत् (शीलित आदि के तुल्य वर्त्तमान काल में) स्मरण करना चाहिये । न म्रियन्ते,अमृताः ॥ १२२३ ॥

१२२४--नपुंसकेभावे क्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

भाव का प्रकाश करना हो तो नपुंसकलिङ्ग में धातु से क्त प्रत्यय हो । हसितम् । शयितम् । जल्पितम् देवदत्तेन ॥ १२२४॥

१२२५-सुयजोर्ङ्वनिप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०३ ॥

षुञ् और यज धातु से भूतकाल में ङ्वनिप् प्रत्यय हो । असावीत् असोष्ट वा सुत्वा । सुत्वानौ । सुत्वानः । अयाक्षीत् अयष्ट वा, यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ॥१२२५॥

१२२६--जीर्यतेरतृन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०४ ॥

जॄष धातु से भूतकाल में अतृन् प्रत्यय हो । अजरत् अजारीद् वा जरन् । जरन्तौ । जरन्तः । वासरूपविधि (८११) से निष्ठा संज्ञक भी होते हैं । जीर्णः । जीर्णवान् ॥ १२२६ ॥

१२२७--छन्दसि लिट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०५ ॥

वेदविषय में भूतकाल में धातु से लिट् प्रत्यय हो । अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । अहं द्यावापृथिवी आततान ॥ १२२७ ॥

१२२८-लिटः कानज्वा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०६ ॥

पूर्वविहित (१२२७) वेदविषयक लिट् के स्थान में कानच् आदेश विकल्प करके हो । अग्निमचैषीत्, अग्निं चिक्यानः । सोमं सुषुवाणः । इन में चिञ् वा षुञ् धातु से लिट् के स्थान में कानच् आदेश है । विकल्प के ग्रहण से कहीं नहीं भी होता । जैसे पूर्वोक्त उदाहरण । अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । इत्यादि ॥ १२२८ ॥

१२२९–क्वसुश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०७ ॥

पूर्वविहित (१२२७) वेद विषयक लिट् के स्थान में क्वसु आदेश भी हो ॥ १२२९॥

१२३०–वस्वेकाजाद्घसाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६७ ॥

द्विर्वचन किये हुए एकाच्, आकारान्त, घस्लृ इन्हीं धातुओं से परे जो वसु उस को इट् आगम हो । एकाच्, अशकदिति शेकिवान् । यहां शक्लृ धातु से लिट् (१२२७) के स्थान में क्वसु (१२२९) और धातुद्विर्वचन (३६) तथा एत्वाभ्यासलोप (१२९) होकर जो एकाच् (शेक्) हो जाता है उस से परे वसु को इडागम हो जाता है । आत्, पपिवान् । घस्लृ जक्षिवान् । यहां (२१४ सूत्र से उपधालोप और उस को (संधि० ६८) रूपातिदेश हो कर द्वित्व (३६) और षत्व (२८४) हो जाता है क्वसु तो लिट् के स्थान में ही होता है और लिड्विषय में क्रादिनियम (१४८) वा उदात्तत्व से इट् प्राप्त ही है । फिर भी जो इट् का विधान किया इस से यह सूत्र नियमार्थ है अर्थात् वसु को इट् एकाच् आदि ही से परे हो अन्य से न हो । इस से बिभिद्वान् । बभूवान् । इत्यादि में इट् नहीं होता ॥ १२३० ॥

१२३१-भाषायां सदवसश्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । २। १०८॥

भाषा अर्थात् लोक में सद, वस, श्रु इन धातुओं से परे भूतकाल में विकल्प करके लिट् और उस के स्थान में क्वसु आदेश नित्य हो। षद्लृ, उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। विकल्पपक्ष में अपने २ विषय में यथोक्त प्रत्यय होते हैं। जैसे भूतसामान्य काल में लुङ्। उपासदत्। अनद्यतन भूतमें लङ्। उपासीदत्। परोक्षभूत में लिट्। उपससाद [वस] निवासे। अनूषिवान् (२८३)कौत्सः पाणिनिम्। अन्ववात्सीत् अन्ववसत। अनूवास। श्रु, उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपाश्रौषीत। उपाशृणोत्। उपशुश्राव॥ १२३१॥

१२३२ उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥ अ० ॥३ । २।१०९॥

उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान ये भाषा में निपातन है। उपेयिवान्। यहां उपपूर्वक [इण] गतौ धातु से लिट् विकल्प करके और उसको नित्य क्वसु द्विर्वचन (३६) अभ्यासं दीर्घ (३४०) और अभ्यासदीर्घसामर्थ्य से एकादेश (सं०१०१) का प्रतिबन्ध हो कर अनेकाच् (उप+ई+इ+वसु=) से इट् निपातन है। उपेयुषां। उपेयुषे। उपेयुषः। उपेयुषि। इत्यादिकों में निपातन इट् नहीं होता क्योंकि 'उपेयिवान्' यहां क्रादिनियम (१७८) से प्राप्त भी इट् था पर (१२३०) सूत्र के नियम सेअनेकाच् से नहीं होता था उसी इट् का प्रादुर्भाव मात्र किया किन्तु अपूर्व इट् विधान नहीं किया इस से अजादिकों में जहां वसु को (नामि० १५६) सूत्र से संप्रसारण होता वहां इट् नहीं होता है। यहां उप अविवक्षित है जैसे। समीयिवान्। ईयिवान्। लिट् के विकल्प पक्ष में पूर्ववत् लुङादि होते हैं। उपागात्। उपैत्। उपेयाय। अनाश्वान्। यहां नञ् पूर्वक [अश] भोजने धातु से पूर्ववत् लिट् क्वसु और इट् अभाव निपातन है। विकल्प पक्ष में। अनाश्वान्। नाशीत्। नाश्नात्। नाश। अनूचानः कर्त्तरि॥ महाभाष्य ३। २। १०९। अनूक्तवान् अनूचानः। यहां अनुपूर्वक वच से कर्त्ता में पूर्ववत् लिट् उस के स्थान में कानच् आदेश निपातन है। दूसरे पक्ष में। अनूचानः। अन्ववोचत्। अन्वब्रवीत्। अनूवाच॥ १२३२॥

१२३३--विभाषा गमहनविदविशाम् ॥ अ० ॥७। २। ६८॥

गम, हन विद विश,इन से परे वसु को इट् विकल्प करके हो। गम्लृ,जग्मिवान् [२१४] जगन्वान् (१३७) हन,जघ्निवान्। जघन्वान्। विद, विविदिवान्। वि-

विद्वान् । विश, विविशिवान् । विविश्वान् । विश के साहचर्य से यहां विद करके [विद्लृ] लाभे का ग्रहण है जो इस ग्रन्थ में (२७७) संख्या पर सूत्र लिखा है उस से अष्टाध्यायी के क्रम से मण्डूकप्लुतिवत् दृश का अनुवर्त्तन कर । दृशिर् से ददृशिवान् । ददृश्वान् । ये भी समझने चाहिये ॥ १२३३ ॥

१२३४–सनिंससनिवांसम् ॥ अ० ॥ ७ । २ ॥ ६९ ॥

वसु के इट्प्रकरण में 'सनिंससनिवांसम्' यह निपातन है । अग्निंत्वाग्ने सनिंससनिवांसम् । यहां सनिङ्पूर्वक [षुञ्] अभिषवे वा [षन] संभक्तौ से वसु को इट् आगम तथा एत्व और अभ्यास लोप का अभाव निपातन है यह निपातन वेद ही में आता है ॥ १२३४ ॥

१२३५ – लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२४ ॥

जब प्रथमान्त के साथ लट् (४) प्रत्यय का समानाधिकरण न हो तो उस के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय विकल्प से हों । ये दोनों प्रत्यय शित् हैं इस से इन की सार्वधातुक संज्ञा (१८) होकर इन के परे शप् (१९) आदि प्रत्यय भी होते हैं । जैसे (पच्+शप्+शतृ+अम्=) पचन्तं चैत्रं पश्य । यहां लट् जिस का वाचक है वह कर्तृसंज्ञक चैत्र शब्द द्वितीयान्त है (७५२) इस संख्या पर जो सूत्र लिखा है उस से विभाषा पद की अनुवृत्ति यहां आती है उस को व्यवस्थित विभाषा मान कर प्रथमासमानाधिकरण में लट् के स्थान में शतृ शानच् विकल्प करके होते हैं यह समझना चाहिये । पचन् मैत्रः । पचति मैत्रो वा । मैत्र किसी के लिये पचा रहा है ॥ अप्रथमासमानाधिकरण में तो नित्य होते हैं ॥ १२३५ ॥

१२३६ – आने मुक् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८२ ॥

आन परे हो तो अङ्ग के अकार को मुक् का आगम हो । पचमानं चैत्रं पश्य । यहां लट् के स्थान में शानच् आदेश है । पचमानो मैत्रः । पचते मैत्रः । मैत्र अपने लिये पकाता है ॥ १२३६ ॥

१२३७ – वा० – माङ्याक्रोशे ॥

माङ् उपपद हो तो आक्रोश (निन्दा) अर्थ में उक्तविषयक शतृ शानच् हों । मा पचन् । मा पचमानः । मत पका रे ॥ २१३७ ॥

१२३८ – संबोधने च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२५ ॥

संबोधनविषय में लट् के स्थान में शतृ शानच् प्रत्यय विकल्प कर के हों । हे पचन् हे पचमान । हे कुर्वन् । हे कुर्वाण ॥ १२३८ ॥

१२३९ – लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२६ ॥

क्रिया के लक्षण (परिचय कराने) और हेतु (कारण) अर्थ में वर्तमान धातु से परे लट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश विकल्प कर के हों । लक्षण, शयाना वर्धते दूर्वा। शयाना भुञ्जते यवनाः। हेतु, धनमर्जयन् वसति। अधीयानो वसति। लक्षणहेतुग्रहण से यहां न हुए ।अधीते । भुङ्क्ते । क्रियाग्रहण से द्रव्य और गुण के परिचयादि में न० । यः कम्पते स वटः ।यः स्थिरो भवति स गुरुः ॥ १२३९ ॥

१२४० – ईदासः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८३ ॥

आस् धातु से आन को ईकारादेश हो । आसीनः । आस्ते । आसीनं पश्य । आसीनेन कृतम् इत्यादि ॥ १२४० ॥

१२४१ – विदेः शतुर्वसुः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३६ ॥

विद (विद ज्ञाने) से परे शतृ को वसु आदेश विकल्प करके हो । विद्वान् । विदन् । विदुषी (नामि० १५६) १२४१ ॥

१२४२–तौ सत् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२७ ॥

पूर्वोक्त शतृ और शानच् सत्संज्ञक हों ॥ १२४२ ॥

१२४३–लृटः सद्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४ ॥

लृट् के स्थान में सत्संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । यहां भी यह विकल्प व्यवस्थित विभाषा है इस से जैसे लट्स्थानी शतृ शानच् प्रथमासमानाधिकरण में विकल्प करके और द्वितीयादिकों में नित्य होते हैं वैसे यहां भी हों । करिष्यन्तं करिष्यमाणं मैत्रं पश्य । करिष्यमाणः । करिष्यति । हे करिष्यन् । हे करिष्यमाण । अर्जयिष्यमाणो वसति ॥ १२४३ ॥

१२४४-पूङ्यजोः शानन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२८ ॥

वर्त्तमान काल में पूङ् और यज धातु से शानन् प्रत्यय हो । पूङ्, पवमानः । यज, यजमानः ॥ १२४४ ॥

१२४५-ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥ अ० ॥३।२।१२९॥

वर्त्तमानकाल में ताच्छील्य (स्वभाव) वयोवचन (अवस्थासंबन्धीवचन) शक्ति (सामर्थ्य) इन अर्थों में धातु से चानश् प्रत्यय हो । ताच्छील्य, घृतं भुञ्जानः । वयोवचन, कवचं बिभ्राणः । शक्ति, शत्रुं निघ्नानः॥ १२४५ ॥

१२४६-इङ्धार्य्योः शत्रकृच्छ्रिणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३० ॥

कष्टसाध्य जिस का क्रियाफल न हो वह कर्त्ता वाच्य हो तो वर्त्तमान काल में इङ् और णिजन्त धृञ् धातु से शतृ प्रत्यय हो । अधीयन् पारायणम् । धारयन्नुपनिषदम् । अकृच्छ्रिन् ग्रहण से यहां न हुआ । कृच्छ्रेणाधीते । कृच्छ्रेण धारयति ॥ १२४६ ॥

१२४७- द्विषोऽमित्रे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३१ ॥

अमित्र (शत्रु) कर्त्ता वाच्य हो तो वर्त्तमानकाल में द्विष धातु से शतृ प्रत्यय हो द्वेष्टीति द्विषन् । द्विषन्तौ । द्विषन्तः । अमित्रग्रहण से यहां न हुआ । पिता पुत्रं द्वेष्टि ॥ १२४७ ॥

१२४८-सुञो यज्ञसंयोगे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३२ ॥

वर्त्तमान काल में यज्ञसंयोग (अभिषव) अर्थ में वर्त्तमान षुञ् धातु से शतृ प्रत्यय हो । सर्वे सुन्वन्तः । यहां संयोगग्रहण प्रधान कर्त्ताओं के ग्रहण करने के लिये है अर्थात् साधारण यज्ञ करने कराने वालों के ग्रहण में नहीं होता । याजकाः सुन्वन्ति । यज्ञ का ही संयोग ग्रहण क्यों किया । सुरां सुनोति । यहां न हो ॥ १२४८

१२४९-अर्हः प्रशंसायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३३ ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान काल में अर्ह धातु से शतृ प्रत्यय हो । भवान् विद्यामर्हन् । प्रशंसाग्रहण से यहां न० तस्करो वधमर्हति ॥ १२४९ ॥

१२५०-आक्केस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥ अ० ३।२।१३४॥

यहां से लेकर क्विप् प्रत्यय पर्यन्त जो प्रत्यय कहें वे वर्त्तमान काल में तच्छील (जो स्वभाव से फल को न चाह कर कर्म में प्रवृत्त हो) तद्धर्मा (जो विना भी शील मेरा धर्म है ऐसा मान कर कर्म में प्रवृत्त हो) तत्साधुकारी (क्रिया को सुन्दरता से करे) इन कर्त्ताओं में हो ॥ १२५० ॥

१२५१–तृन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में धातुमात्र से तृन् प्रत्यय हो । तच्छील, कटं करोति तच्छीलः, कटं कर्त्ता । जनापवादान् वदिता । तद्धर्मा, उन्नयन्ति तद्धर्मिण उन्नेतारः तौल्वलायनाः पुत्रे जाते । तत्साधुकारी, साधु कटं करोति,कटं कर्त्ता ॥ १२५१ ॥

१२५२–वा०–तृन्विधावृत्विक्षु चानुपसर्गस्य ॥

तृन् प्रत्यय के विधान करने में ऋत्विज् आदि कर्त्ता हों तो उपसर्गरहित धातु से (तृन् प्रत्यय कहना चाहिये । जुहोतीति होता । पुनातीति । पोता । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रतिहर्त्ता । यहां तृच् होता है ॥ १२५२ ॥

१२५३–वा०–त्विषेर्देवतायामकारश्चोपधाया अनिट्त्वं च ॥

देवता अर्थ में त्विष धातु से तृन् प्रत्यय तथा उपधा को अकार और इट् का अभाव भी कहना चाहिये । त्विष, त्वेषितुं शीलमस्य, त्वष्टा ॥ १२५३ ॥

१२५४–वा०–क्षदेश्च नियुक्ते ॥

नियुक्त (जो कहीं अधिकार पाये हो उस) कर्त्ता में क्षद धातु से तृन् प्रत्यय कहना चाहिये । क्षदसौत्र धातु है इस को आच्छादन अर्थ में मानते हैं । क्षत्ता सारथि का नाम है ॥ १२५४ ॥

१२५५–वा०–छन्दसि तृच्च ॥

वेदविषय में क्षद धातु से तृच् और तृन् प्रत्यय हों । क्षत्तृभ्यः संगृहीतृभ्यः ॥ १२५५ ॥

१२५६–अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप वृतुवृधुसहचर इष्णुच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में अलंकृञ् निराकृञ्, प्रजन, उत्पच, उत्पत, उन्मद रुच, अपत्रप, वृतु, वृधु सह, चर इन धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय हो । अलं–कृञ्. अलंकर्त्तुंशीलमस्य अलंकर्त्तुंधर्मोऽस्य, साध्वलं करोति वा अलंकरिष्णुः । निर्–आङ्कृञ् निराकरिष्णुः । प्र–जन, प्रजनिष्णुः । उद्–डुपचष्, उत्पचिष्णुः । उद्–पत्लृ उत्पतिष्णुः । उद्–मदी, उन्मदिष्णुः रुच, रोचिष्णुः । अप–त्रपूष्, अपत्रपिष्णुः वृतु, वर्त्तिष्णुः । वृधु, वर्धिष्णुः । षह, सहिष्णुः । चर, चरिष्णुः ॥ १२५६ ।

१२५७–णेश्छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३७॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में णिजन्त धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो । दृषदं धारयिष्णवः । वीरुधः पारयिष्णवः ॥ १२५७ ॥

१२५८–भुवश्च ॥ अ० ॥ ३ ।२ । १३८॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में भू धातु से इष्णुच् प्रत्यय हो । भविष्णुः । चकार अनुक्त के ग्रहण करने के लिये है । इस से टुभ्राजृ णिजन्त से । भ्राजयिष्णु भी समझ लेना चाहिये ॥ १२५८ ॥

१२५९–ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः ॥ अ० ॥ ३ । २ ॥ १३९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में ग्ला, जि, स्था, और, भू इन धातुओं से क्स्नु, प्रत्यय हो । ग्लै, ग्लास्नुः । जि, जिष्णुः । ष्ठा, स्थास्नुः । भू, भूष्णुः । यहां चर्त्व होकर 'ग्' को 'क्' हो गया है (४५) सूत्र में 'ग्, के निर्देश से उक्त प्रयोगों में गुणादेश नहीं होता तथा (२५५) सूत्र में ग् के निर्देश से ' भूष्णु, यहां इडागम भी नहीं होता है ॥ १२५९ ॥

१२६०–वा०–स्थादंशिभ्यां स्नुश्छन्दसि ॥

वेद में स्था और दंश धातु से स्नुप्रत्यय० । स्थास्नु जङ्गमं दंदणवः पशवः॥१२६०॥

१२६१–त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥ अ०॥३ । २।१४० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में त्रसी, गृधु, ञिधृषा, इन धातुओं से क्नु प्रत्यय हो । त्रसी, त्रस्नुः । गृधु, गृध्नुः, । ञिधृषा, धृष्णुः । क्षिप, क्षिप्नुः ॥ १२६१ ॥

१२६२–शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥ अ० ॥ ३ । २। १४१ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शमु *आदि आठ धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो (घिनुण्) यहां घकार कुत्व के लिये उकार उगित् कार्य के लिये णकार वृद्धि के लिये है । शमितुं शीलं धर्मो वास्य साधुशाम्यति वा शमी । शमिनौ । शमिनः । यहां उगित् कार्य्य नुम् (नामि० ११३) नहीं होता । नुम् विधि में अष्टाध्यायी के क्रम से [नामि० ४५] सूत्र से झल् का अपकर्षण कर झलन्त उगित् को नुम् आगम हो ऐसा अर्थ वहां जानेंगे । यहां वृद्धि (१२६) प्राप्त है उसी की निवृत्ति [७२६] से हो

*(शमु)उपशमे (तमु) काङ्क्षायाम् (दमु) उपशमे(श्रमु) तपसि खेदे च (भ्रमु) अनवस्थाने(क्षमू) सहने(क्लमु) ग्लानौ(मदी) हर्षे ये आठ शमादि धातु हैं ॥

जाती है । तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्षमी । क्लमी । प्रमादी । आठ का ही ग्रहण क्यों किया । असु, असिता यहां न हो ॥ १२६२ ॥

१२६३-संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च॥अ०॥३।२।१४२॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सम्पृचादि धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो (सम्पृच) यहां रुधादि [पृची] संपर्के इस का ग्रहण है । सम्पृणक्ति तच्छीलः, संपर्की । अनुरुध, अनुरुध्यते तच्छीलः, अनुरोधी । आङ्यम, आयच्छति तच्छीलः आयामी । आयसु, आयस्यति आयसति वा तच्छीलः आयासी परिसृ, परिसरति । तच्छीलः परिसारी । संसृज, संसृज्यते । तच्छीलः, संसर्गी । परिदेवि, यहां [देवृ] देवने इस भ्वादिस्थ का ग्रहण है । परिदेवते तच्छीलः, परिदेवी । जो विलाप करता है उस के जैसा स्वभाव वाला पुरुष है । संज्वरति तच्छीलः संज्वारी । परिक्षिप, [क्षिप] प्रेरणे दिवादि वा तुदादि दोनों का ग्रहण है । परिक्षिप्यति, परिक्षिपति । परिक्षिपते वा तच्छीलः, परिक्षेपी । परिरट, परिरटति तच्छीलः, परिराटी । परिवदति तच्छीलः, परिवादी । परिदह्यति तच्छीलः, परिदाही । परिमुह, परिमुह्यति, तच्छीलः परिमोही । दुष, दुष्यति तच्छीलः दोषी । द्विष, द्वेष्टि तच्छीलः द्वेषी । द्रुह, द्रुह्यति तच्छीलः, द्रोही । दुह, दोग्धि तच्छीलः दोही । युज, यहां [युज] समाधौ दिवादि [युजिर्] योगे रुधादि इन दोनों का ग्रहण है युज्यते युनक्ति युङ्क्ते वा तच्छीलः, योगी । आक्रीड़, आक्रीडते तच्छीलः, आक्रीडी । वि विचिर्, विविनक्ति विविनक्ते वा तच्छीलः, विवेकी । त्यज, त्यागी (९४३) रञ्ज, रागी । भज भागी । अतिचर, अतिचारी । अपचर, । अपचारी । आमुष, आमुष्णाति तच्छीलः आमोषी । अभिआङ्-हन, अभ्याहन्ति, तच्छीलः अभ्याघाती (३०४, ५०२) इन सूत्रों से कुत्व और तकारा देश० ॥ १२६३ ॥

१२६४-वौ कषलसकत्थस्रम्भः अ०॥ ३ । २ । १४३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विपूर्वक कष, लस, कत्थ, स्रम्भु इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो । [कष] हिंसायाम् । विकाषी । लस । श्लेषणक्रीडनयोः । विलासी [कत्थ] श्लाघायाम् । विकत्थी [स्रम्भु] विश्वासे । विस्रम्भी ॥ १२६४ ॥

१२६५-अपे च लषः ॥ अ० ३ । २ । १४४ ॥

अप और वि पूर्व हों तो लष धातु से घिनुण् प्रत्यय हो तच्छी० । [लष] कान्तौ । अपलाषी विलाषी ॥ १२६५ ॥

१२६६-प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥ अ० ॥ ३ । २ १४५॥

तच्छीलादिकों में प्र पूर्वक लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो । प्रलप, प्रलापी । प्रसृ, प्रसारी । प्रद्रु, प्रद्रावी । प्रमथे, प्रमाथी । प्रवद, प्रवादी । प्रवस, वस निवासे प्रवासी ॥ १२६६ ॥

१२६७-निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में निन्द आदि धातुओं से वुञ् प्रत्यय हो । णिदि, निन्दकः । हिंसि, हिंसकः । क्लिश उपतापे वा क्लिशू विबाधने दोनों का ग्रहण है । क्लेशकः खादृ, खादकः विनाश, वि–णश–णिच, विनाशयति तच्छीलः, विनाशकः । परिक्षिप, परिक्षेपकः । परिरट, परिराटकः । परिवद, परिवादकः । वि–आ–भाष, व्याभाषकः । ण्वुल (९७४) प्रत्यय से भी उक्त प्रयोग सिद्ध हैं फिर वुञ् प्रत्यय का यह प्रयोजन है कि तच्छीलादिकों में वासरूपन्याय (९११) से तृच् आदि अन्य प्रत्यय नहीं होते हैं ॥ १२६७ ॥

१२६८-देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४७ ॥

उपसर्ग पूर्व हो तो देवि और क्रुश धातु से वुञ् प्रत्यय हो तच्छी० । आदेवयति तच्छीलः, आदेवकः । परिदेवकः । परिक्रोशकः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ देवयिता । क्रोष्टा । यहां तृन् हो जाता है ॥ १२६८ ॥

१२६९-चलन शब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ अ ॥ ३ । २ । १४८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में चलन और शब्द अर्थ वाले अकर्मक धातुओं से युच् प्रत्यय हो [चल] कंपने चलनः । कपि संचलने कम्पनः । चुप मन्दायां गतौ चोपनः । शब्दार्थ, शब्दनः । रवणः । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ विद्यां पठिता । शास्त्रं वदिता । यहां तृन् हो जाता है ॥ १२६९ ॥

१२७०-अनुदात्तेतश्च हलादेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४९ ॥

अनुदात्त जिस का इत् संज्ञक हो ऐसा जो हलादि अकर्मक धातु उस से भी युच् प्रत्यय हो तच्छी० । वृतु, वर्त्तनः । वृधु,वर्द्धनः । अनुदात्तेत् के ग्रहण से यहां न० । भविता । हलादि ग्रहण से यहां न० । एधिता । अकर्मकग्रहण से यहां न हुआ । वस्त्रं वसिता यहां तृन् हो जाता है ॥ १२७० ॥

१२७१-जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥ अ० ३ २ । १५० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जु आदि धातुओं से युच् प्रत्यय हो । जु, यह सौत्र धातु है इस को गति वा वेग अर्थ में मानते हैं । जवनः । चङ्क्रम्य, क्रमु-यङ् चङ्क्रम्यते तच्छीलः, चङ्क्रमणः । दन्द्रम्य, द्रमु-यङ्, दन्द्रमणः । सृ, सरणः । गृधु, गर्द्धनः । ज्वल, ज्वलनः । शुच, शोचनः । लष, लषणः । पत्लृ, पतनः । पद, पदनः । यद्यपि (१२७०) सूत्र से पद धातु से युच् प्रत्यय हो जाता तथापि पद का ग्रहण इस लिये है कि इस से सामान्य युच् प्रत्यय को बाधके विशेष उकञ् (१२७५) प्रत्यय न हो जाय क्योंकि तच्छीलादिकों में (९११) सूत्र के अनुसार परस्पर प्रत्यय नहीं होते हैं इस अंश में यही पदग्रहण ज्ञापक है ॥ असरूपनिवृत्त्यर्थं तर्हिपदग्रहणं क्रियते एतज्ज्ञापयत्याचार्य्यः । ताच्छीलिकेषु ताच्छीलिका वासरूपन्यायेन न भवन्ति महाभाष्य ३ । २ । १५० ॥ १२७१ ॥

१२७२-क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५१ ॥

तच्छीलादिकों में कोप और भूषण अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो [क्रुध] कोपे क्रोधनः । रोषणः [मडि] भूषायाम् । मण्डनः । भूषणः ॥ १२७२ ॥

१२७३-न यः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५२ ॥

यकारान्त धातु से युच् प्रत्यय न हो [क्नूयी) शब्दे उन्दे च क्नूयिता [क्ष्मायी] विधूनने । क्ष्मायिता । इन में (१२७०) सूत्र से युच् प्रत्यय प्राप्त है सो नहीं होता किन्तु तृन् (१२५१) प्रत्यय होजाता है ॥ १२७३ ॥

१२७४-सूददीपदीक्षश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५३॥

सूद, दीप, दीक्ष इन धातुओं से युच् प्रत्यय न हो [षूद] क्षरणे सूदयति । तच्छीलः सूदिता [१२५१] दीपी, दीपिता । दीक्ष,दीक्षिता । इन सभों में [१२६९]

सूत्र से युच् प्राप्त है । यहां दीप ग्रहण क्यों किया क्योंकि दीप् धातु से विशेष विहित र [१२८१] प्रत्यय सामान्य युच् [१२७०] प्रत्यय को बाध के हो जाता इस लिये दीपि ग्रहण ज्ञापक है वासरूपन्याय [९११] से र प्रत्यय के साथ युच् का समावेश होता है । इस ज्ञापन से यह प्रयोजन है कि । कम्रा कन्या। कमना कन्या इत्यादि । सिद्ध हों ॥ १२७४ ॥

१२७५-लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५४

तच्छीलादि कर्त्ताओं में लष, पत, पद, स्था, भू, वृष, हन, कम, गम, शॄ इन धातुओं से उकञ् प्रत्यय हो । लष, अपलाषुकः । पत्लृ, प्रपातुकः । पद, पादुकः । ष्ठा, उपस्थायुकः । भू, भावुकः । वृष, प्रवर्षुकः । पर्जन्यः । हन, घातुकः । कमु, कामुकः । गम्लृ, आगामुकः [शॄ] हिंसायाम् । शृणातितच्छीलः शारुकः । किंशारुकम् तीक्ष्णम् ॥ १२७५ ॥

१२७६-जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ्, इन धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो । जल्प, जल्पाकः । भिक्ष, भिक्षाकः । कुट्ट, कुट्टाकः [लुटि]* स्तेये लुण्टाकः । वृङ्, वराकः । स्त्री लिङ्ग में जल्पाकी (स्त्रै० ७०) ङीष् हो जाता है ॥ १२७६ ॥

१२७७-प्रजोरिनिः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में प्रपूर्वक जु धातु से इनि प्रत्यय हो । प्रजवी । प्रजविनौ । प्रजविनः ॥ १२ ७७ ॥

१२७८-जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जि, दृ, क्षि, विश्रि, इण, टुवमु, अव्यथ, अभ्यम, परिभू प्रसू इन धातुओं से इनि प्रत्यय हो । जि, जेतुं शीलमस्य जयी । दृङ्, दरी [क्षि] क्षये [क्षि] निवासगत्योः । क्षयी । विश्रिञ् विश्रयी । इण अत्ययी । टुवमु, वमी नञ्–व्यथ, अव्यथी । अभि–अमो, अभ्यमी । परि–भू परिभवी । प्रसू, प्रसवी ॥ १२७८

* इस धातु को कोइ आचार्य्य लुठि कोई लुडि भी पढ़ते हैं ॥

१२७९–स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्पृह आदि धातुओं से आलुच् प्रत्यय हो [स्पृह]ई-प्सायाम् स्पृहयालुः [ग्रह] ग्रहणे ग्रहयालुः [पत] गतौ पतयालुः । ये चुरादि अदन्तों में हैं । दय, दयालुः । निद्रा, [द्रा] कुत्सायाम् निद्रालुः । तद्--द्रा,तन्द्रालुः । यहां तद् के द् को नकारादेश निपातन है । श्रत्--डुधाञ , श्रद्धालुः ॥ १२७९ ॥

१२८०–वा०–आलुचि शीङ्ग्रहणम् ॥

आलुच् प्रत्यय के विषय में शीङ का भी ग्रहण करना चाहिये । शयितुं शीलमस्य शयालुः ॥ १२८० ॥

१२८१–दाधेट्सिशदसदोरुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५९ ॥

दा, धेट, सि, शद, सद, इन धातुओं से रुप्रत्यय हो तच्छी० । दातुं शीलमस्य-दारुः । धातुं शीलमस्य धारुः । सीव्यति तच्छीलः । सेरुः । शीयते तच्छीलःशद्रुः।सीदति तच्छीलः । सद्रुः ॥ १२८१ ॥

१२८२–सृघस्यदः क्मरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६० ॥

सृ घस अद् इन धातुओं से क्मरच् प्रत्यय हो तच्छी० । सृ, सृमरः । घस्लृ,घस्मरः । अद, अद्मरः ॥ १२८२ ॥

१२८३–भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६१

भञ्ज, भास मिद इन धातुओं से घुरच् प्रत्यय हो तच्छी०।भञ्जो भङ्गुरः (९४१) भासृ, भासुरः । ञिमिदा, मेदुरः ॥ १२८३ ॥

१२८४–विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २।१६२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विद्आदि धातुओं से कुरच् प्रत्यय हो । विद [विद ज्ञाने] वेत्ति तच्छीलः,विदुरः (भिदिर्) भिदुरः । (छिदिर्)छिदुरः ॥ १२८४ ॥

१२८५–इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप् ॥ अ० ॥ ३। २ । १६३॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में इण्, नश, जि, सर्त्ति इन धातुओं से क्वरप् प्रत्यय हो ।

इण्, इत्वरः णश, नश्वरः । जि, जित्वरः । सृ, सृत्वरः (सं० २७३) से तुक् । स्त्रीलिङ्ग में इत्वरी (स्त्रैण० ३५) जित्वरी । इत्यादि ॥ १२८५ ॥

१२८६–गत्वरश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में गत्वर यह निपातन है । गन्तुं शीलमस्य, गत्वरः । स्त्री गत्वरी । यहां गम्लृ से क्वरप् और अनुनासिकलोप निपातन है ॥ १२८६ ॥

१२८७–जागरूकः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६५ ॥

तच्छीलादिकों में जागृ धातु से ऊक प्रत्यय हो [जागृ] निद्राक्षये जागरूकः ॥ १२८७ ॥

१२८८–यजजपदशां यङः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६६ ॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में यज, जप, दंश इन के यङ् से परे ऊक प्रत्यय हो । यायज्य, यायजितुंशीलमस्य, यायजूकः । जञ्जप्य, जञ्जपूकः । दंदश्य दंदशूकः १२८८ ॥

१२८९–नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में नम् आदि धातुओं से परे र प्रत्यय हो । णम, नम्रम् । काष्ठम् । कपि, कंप्रा शाखा । ष्मिङ् स्मेरम् मुखम् । अजस, [जसु] मोक्षणे नञ्पूर्वक है अजस्रम् । निरन्तरम् । कमु, कम्रा कन्या । हिसि, हिंस्रम् । रक्षः । दीपी, दीपितुं शीलमस्य दीप्रः । वन्हिः ॥ १२८९ ॥

१२९०–सनाशंसभिक्ष उः ॥ ३ । २ । १६८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सनन्त, आशंस, भिक्ष इन धातुओं से उ प्रत्यय हो । सनन्त, पिपाठिषितुं शीलमस्य पिपाठिषुः । चिकीर्षुः आशंस, [आङः शासि] इच्छायाम् । भ्वादिः आशंसते तच्छीलः आशंसुः । भिक्षुः ॥ १२९० ॥

१२९१–विन्दुरिच्छुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विन्दु और इच्छु ये निपातन हों । वेत्ति तच्छीलो, विन्दुः । यहां [विद] ज्ञाने धातु से उ प्रत्यय और नुमागम निपातन है । इच्छति तच्छीलः, इच्छुः । यहां [इषु] इच्छायाम् से उ प्रत्यय और छकारादेश० ॥ १२९१ ॥

१२९२–आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७० ॥

वेदविषय में आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम, हन, और जन इन धातुओं से कि और किन् प्रत्यय हों और वे लिट् प्रत्यय के तुल्य हों । आ, [पा] पाने पपी तच्छीलः पपिः सोमम् । डुदाञ् ददिर्गाः । इन में लिड्वद्भाव मान कर (११) सूत्र-

से धातु द्विर्वचन हो जाता है । ऋ. भृ, बभ्रिर्वज्रम् । तॄ, मित्रावरुणौ ततुरिः । [गॄ,] शब्दे दूरेह्यध्वा जगुरिः । गम्लृ, जग्मिर्युवा । हन, जघ्निर्वृत्रम् । जन जज्ञिर्बीजम् । इन में उपधालोप (२१४) सूत्र से होता है यद्यपि (१३७) कित् संज्ञा सिद्ध भी है तथापि लिट् के कित्व विषय में भी जो गुणविधान (२५८) किया है उस के प्रतिषेध के लिये (कि, किन्) इन प्रत्ययों में ककार पढ़ा है (आदृ,०) यहां आ,ऋ का अलग २ मुख से उच्चारण होने के लिये दृ पढ़ा किन्तु तपरकरण नहीं है ॥१२९२॥

१२९३–वा०–उत्सर्गश्छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् ॥

वेदविषय में सद आदि धातुओं से कि, किन्, प्रत्ययों का दर्शन है इस से ये उत्सर्गमात्र हैं ऐसा कहना चाहिये अर्थात् आकारान्तों से अन्यत्र भी होते हैं । सदिमनिरमिनामिविचीनाम् । महाभाष्य । षद्लृ, सेदिः । मन, मेनिः । रम, रेमिः । णम, नेमिश्चक्रमिवाभवन् । विचिर् विविचिं रत्नधातमम् ॥ १२९३ ॥

१२९४–वा०–भाषायां धाञ्कृसृजनिनमिभ्यः ॥

भाषा में धाञ्, कृ, सृ, जन, नम इन धातुओं से कि, किन् प्रत्यय कहना चाहिये तच्छी० । डुधाञ्, दधिः । कृ चक्रिः । सृ, सस्रिः । जन, जज्ञिः । णम, नेमिः ॥१२९४ ॥

१२९५–वा०–सहिवहिचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त सहादि धातुओं से कि किन् प्रत्ययों को कहना चाहिये । सह-यङ् वृषा सहमानं सासहिः । वह-यङ् वावहिः चल-यङ्, चाचलिः । पत्लृ-यङ्, पापतिः यहां नीक् (५४२) का अभाव निपातन है ॥ १२९५ ॥

१२९६–स्वपितृषोर्नजिङ् ॥ अ० ॥ ३ ।२ १७२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्वप् और तृष् धातु से नजिङ् प्रत्यय हो । ञिष्वप, स्वप्नक् । ञितृषा, तृष्णक् ॥ १२९६ ॥

१२९७–शॄवन्द्योरारुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शॄ और वदि धातु से आरु प्रत्यय हो [शॄ] हिंसायाम् शरारुः [वदि] अभिवादनस्तुत्योः वन्दारुः ॥ १२९७ ॥

१२९८—भियः क्रुक्लुकनौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भी धातु से क्रु और क्लुकन् प्रत्यय हो [ञिभी] भये । बिभेति तच्छीलो । भीरुः । भीलुकः ॥ १२९८ ॥

१२९९—वा०—भियः क्रुकन्नपि वक्तव्यः ॥

भी धातु से क्रुकन् प्रत्यय भी कहना चाहिये । भीरुकः ॥ १२९९ ॥

१३००स्थेशभासपिसकसो वरच् अ० ॥ ३ । २ । १७५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्था आदि धातुओं से वरच् प्रत्यय हो [ष्ठा] गतिनिवृत्तौ । स्थातुं शीलमस्य स्थावरः (ईश] ऐश्वर्य्ये । ईशितुं शीलमस्य, ईश्वरः [भासृ] दीप्तौ भास्वरः [पिसृ,पेसृ] गतौ] । पेस्वरः [कस] गतौ । विकस्वरः ॥ १३०० ॥

१३०१—यश्च यङः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त या धातु से वरच् प्रत्यय हो (याया–य–वर–सु) यहां पर यकार के अकार का लोप [१७२] किये पीछे उस को स्थानिवद्भाव [सन्धि० ६३] जो प्राप्त है उस का यलोपविधि के प्रति प्रतिषेध [सन्धि० ६४] हो कर यलोप हो जाता है । यायावरः ॥ १३०१ ॥

१३०२—भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भ्राज आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय हो । टुभ्राजृ,विभ्राजते तच्छीलः विभ्रट् । विभ्राड् । विभ्राजौ । विभ्राजः । भासृ, भाः । भासौ । भासः धुर्वी, धूः । धुरौ । धुरः [५५९] द्युत्,विद्युत् [ऊर्ज] बलप्राणनयोः । ऊर्क् । ऊर्गू। पृ, पूः । पुरौ यहां [३८०] जु,यह सौत्र धातु गति और वेग में वर्त्तमान है । जूः । जुवौ । यहां उत्तर सूत्र में [१३०४] जो वार्त्तिक पढ़ा है उस से दीर्घादेश जानना चाहिये । ग्रावस्तु, ग्राव–ष्टुञ्,* ग्रावस्तुत् । ग्रावस्तुतौ । ग्रावस्तुतः ॥ १३०२ ॥

१३०३—अन्येभ्योपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में और धातुओं से भी क्विप् प्रत्यय देखा जाता है । पचति

* यहां ग्राव शब्द का स्तु धातु के साथ समास निपातन से कर पीछे क्विप् प्रत्यय होता है ॥

तच्छीलः पक् । भिनत्ति, भित् । छिनात्ति, छित् । यहां दृश्यते यह दृशि ग्रहण विशेष विधान करने के लिये है अर्थात् उक्त क्विप् के परे कहीं दीर्घ कहीं द्विर्वचन कहीं संप्रसारण कहीं संप्रसारण का अभाव आदि कार्य्य होते हैं जैसे—॥ १३०३ ॥

१३०४—वा०वचिप्रच्छायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥

वच, प्रच्छ, आयतस्तु, कटप्रु, जु, श्रिञ् इन धातुओं से क्विप् प्रत्यय दीर्घ तथा संप्रसारण का अभाव कहना चाहिये । वक्तीति वाक् । पृच्छति, प्राट् । आयतं स्तौति, आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जवते, जूः । यहां जु का ग्रहण केवल दीर्घ के लिये है । हरिं श्रयति, श्रीः । लक्ष्मीः ॥ १३०४ ॥

१३०५—वा०—द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च

द्युत, गम्लृ, हु इन से क्विप् और इनको द्वित्वादेश० । विद्युत् । यहां द्युत धातु को क्विप् के परे द्विर्वचन और उक्त दृशि ग्रहण से पूर्व की अभ्यास संज्ञा (३७) तथा उस अभ्यास को संप्रसारण (२१८) हो जाता है । गम्लृ, जगत् (११०५) अनुनासिक लोप० ॥ १३०५ ॥

१३०६--वा०--जुहोतेर्दीर्घश्च ॥

हु धातु को दीर्घ भी होना चाहिये । जुहूः । जुहोतेर्ह्वयतेर्वा [हु] दानादानयोः अथवा [ह्वेञ्] स्पर्द्धायां शब्दे च इन से (जुहू) सिद्ध होता है ॥ १३०६ ॥

१३०७--वा०--दृणातेर्ह्रस्वश्च द्वे च क्विप्चेति वक्तव्यम् ॥

दृणाति [दृ] विदारणे से क्विप् प्रत्यय धातु को द्विर्वचन और ह्रस्वादेश भी कहना चाहिये । ददृत् । दृणातेर्दीर्य्यते वा [दॄ] से कर्त्ता वा कर्म में ददृत् होता है । दृणाति वा दीर्य्यते या सा, ददृत् ॥ १३०७ ॥

१३०८-वा०-ध्यायतेः संप्रसारणं च ॥

[ध्यै] चिन्तायाम् धातु से क्विप् उस को संप्रसारण० । धीः । ध्यायतेर्दधातेर्वा (धीः) यह [ध्यै] से वा [डुधाञ्] से सिद्ध होता है ॥ १३०८ ॥

१३०९—भुवः संज्ञान्तरयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७९ ॥

संज्ञा वा अन्तर गम्यमान हो तो भू धातु से क्विप् प्रत्यय हो । संज्ञा, मित्रभूः ।

यह संज्ञा है । अन्तर, प्रतिभूः । धन के लेने देने वालों के बीच जो विश्वास कराने को स्थिर हो जाता है वह प्रतिभू कहाता है ॥ १३०९ ॥

१३१०--विप्रसंभ्योड्वसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८० ॥

संज्ञा न गम्यमान हो तो वि, प्र, सम् इन उपसर्गों से उत्तर जो भू धातु उस से डु प्रत्यय हो । विभुः । जो सर्वगत है । प्रभुः । स्वामी । संभुः । जिस का संभव है । असंज्ञा ग्रहण से जहां विभूः । किसी का नाम हो वहां न हो ॥ १३१० ॥

१३११--वा०--डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानं धातुविधितुक्प्रतिषेधार्थम् ॥

डु प्रत्यय के प्रकरण में धातुविधि (धातु ग्रहण से जो विधान किया जाय,) और तुक् के प्रतिषेध के लिये मितद्रु आदि शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये । मितं द्रवति प्राप्नोति, मितद्रुः । मितद्रू । मितद्रवः । यहां धातु को विहित उवङ् [नामि०९२] नहीं होता तथा [मितद्रु] यहां [सं०२७३] तुक् नहीं होता शं कल्याणं भावयति, शम्भुः । यहां अन्तर्भावित णयर्थ माना जाता है ॥ १३११ ॥

१३१२ -- धः कर्मणिष्ट्रन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८१ ॥

कर्मकारक में धेट् और डुधाञ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो । धयन्ति बालाः स्तन्यार्थिनो यां सा, धात्री [स्त्रैण० ७०] उपमाता० दधति वा भैषज्यार्थं यां सा, धात्री (आमलकी आंवले का नाम है ॥ १३१२ ॥

१३१३ -- दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८२ ॥

करण कारक में दाप् आदि धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय हो [दाप्] लवने दात्यनेन दात्रम् [णीञ्] प्रापणे नयत्यनेन, व्यवहारानिति, नेत्रम् [शसु] हिंसायाम् । शस्त्रम् [यु] मिश्रणेऽमिश्रणे च । योत्रम् [युजिर्] योगे । योक्त्रम् [ष्टुञ्] स्तुतौ स्तोत्रम् [तुद] व्यथने । तोत्रम् [षिञ्] बन्धने । सेत्रम् (षिचिर्] क्षरणे । सेक्त्रम् [मिह] सेचने । मेढ्रम् [पत्लृ] गतौ । पतति गच्छत्यनेनेति, पत्रं वाहनम् दंश दशने दंष्ट्रा [स्त्रै०२] अनुनासिक लोप के साथ जो दंश का निर्देश है सो यह ज्ञापक के लिये है अर्थात् नलोप जिन के परे [३०३] कहा है उन से अन्यत्र भी होता है इस से ' दशनम्, यहां ल्युट् के परे भी होता है [णह] बन्धने नद्ध्रम् ॥ १३१३ ॥

१३१४ – हलसूकरयोः पुवः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८३ ॥

करण कारक में पूङ् धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय हो । जो वह करण हल और सूकर का अवयव हो । पुवते पुनाति वानेन तत् पोत्रम् । हलमुखं सूकरमुखं वा ॥ १३१४ ॥

.१३१५ – अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ॥अ०॥ ३ । २ । १८४ ॥

करण कारक में ऋ आदि धातुओं से इत्र प्रत्यय हो [ऋ] गतौ । अरित्रम् [लूञ्] छेदने । लवित्रम् [धू] विधूनने । धवित्रम् [षू] प्रेरणे । सवित्रम् [खनु] अवदारणे खनित्रम् [षह] मर्षणे । सहित्रम् [चर] गतिभक्षणयोः । चरित्रम् ॥ १३१५ ॥

१३१६---पुवः संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८५ ॥

करण कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो जो समुदाय से संज्ञा गम्यमान हो तो । पवित्रम् । कुश वा ग्रन्थियुक्त कुश [पैंती] आदि को कहते हैं ॥ १३१६ ॥

१३१७---कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ ।१८६॥

ऋषि और देवता वाच्य संज्ञा होतो करण वा कर्त्ता कारक में पूङ् वा पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय हो । यहां यथासंख्य ऋषि, देवता से संबन्ध है अर्थात ऋषि वाच्य हो तो करण में और देवता वाच्य हो तो कर्त्ता में [इत्र] होता है । पूयतेऽनेनेति, पवित्रोयमृषिर्वेदः । अग्निः पवित्रं स मा पुनातु ॥ १३१७ ॥

१३१८---उणादयो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १ ॥

वर्त्तमानकाल और संज्ञाविषय में धातु से उण् आदि प्रत्यय बहुल करके हों । डुकृञ्, करोतीति कारुः । शिल्पी का नाम है । वा, वातीति वायुः । पवनः । इत्यादि । प्रकृति प्रत्यय के अनुसार उणादिगणस्थ उदाहरण जानने चाहिये । बहुलग्रहण से कहे हुए कारक आदि के नियम से अन्यत्र भी शिष्ट प्रयोग के अनुसार प्रकृति प्रत्यय की कल्पना से उणादिगण के प्रयोगों से और भी प्रयोग बनते हैं । इस विषय में महाभाष्यकार ने कहा है कि–

का०--बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥२॥
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥

उक्त सूत्र में प्रकृतिओं की [तनुदृष्टि] तनुता देखने से बाहुल* का [बहुल शब्द से बहुत अर्थों का] ग्रहण तथा उन उण् आदि प्रत्ययों का भी प्राय † [बहुल करके] समुच्चय [समूह] किया है अर्थात् उणादिगण में वे प्रत्यय भी निःशेष नहीं पढ़े हैं और कार्य्यों की सशेषविधि* [उणादिगण के सूत्रों में असमस्तकार्य्य कहे किन्तु निःशेष नहीं कहे] देखने से वह बहुल शब्द पढ़ा है तथापि वैदिक और रूढिभव [संज्ञा वाचक] शब्द अच्छे प्रकार सिद्ध करने हीं है इस से पाणिनि आचार्य्य ने प्रकृतियों की तनुता देख कर बहुल शब्द पढ़ा हैं इस विषय में और आचार्य्यों का ऐसा सिद्धान्त है कि वे प्रकृत्यादिविभाग से शब्दों का साधन मानते हैं किन्तु रूढिप्रकार से नहीं मानते जैसे— ॥ १ ॥

[नाम च] निरुक्तकार निरुक्तग्रन्थ में शब्दों को धातुज अर्थात् प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से कहते और व्याकरणविषय में शकट ऋषि के तोक अपत्य [शाकटायन] वैयाकरणशब्दों को धातुज कहते हैं इस से जो विशेष † प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से

---

*बहुलग्रहण से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में अपठित प्रकृति हैं उन से भी उणादि प्रत्यय होते हैं जैसे वृष धातु से उलच् प्रत्यय कहा है वह (शकि) शंकायाम् से भी होता है "शङ्कुला„ ।

† बहुलवचन से यह समझना चाहिये कि जो उणादिगण में प्रत्यय नहीं कहे हैं वे भी होते हैं जैसे महाभाष्यकार ने [ऋलृक्] सूत्रकेभाष्य में ऋ धातु से फिड, फिड्ड प्रत्यय मान कर " ऋफिडः „ ऋफिड्डः प्रयोग दिखलाये हैं ॥

*उणादिगण में जो अनुक्त कार्य्य हैं वे भी बहुलवचन से होते हैं जैसे "षण्ढः„ यहां षन धातु के मूर्द्धन्य ष को सत्वादेश का अभाव वा सत्वादेश करके मूर्द्धन्यादेश हो जाता है॥

† विशिष्यते यः स विशेषः, पदमर्थः प्रयोजनं यस्य व्युत्पाद्यत्वेन स पदार्थः, विशेषश्चासौ पदार्थो विशेषपदार्थस्तस्माद् यन्न समुत्थं विशिष्टप्रकृतिप्रत्ययोत्पादनेन न व्युत्पादितमिति यावत ।

न जानाजाय वह प्रकृति और प्रत्यय से कल्पनीय है अर्थात् उस की सिद्धि के लिये प्रकृति को देखकर उस के कार्य्य के अनुसार प्रत्यय और प्रत्यय को देख कर प्रकृति की कल्पना करनीचाहिये। यह कल्पना सर्वत्र नहीं होती किन्तु ॥ २ ॥

(संज्ञासु०) संज्ञा आदि शब्दों में धातुरूप और उन धातुओं से परे प्रत्यय तथा वृद्धि, गुण, उदात्तस्वर आदि कार्य्य के अनुसार प्रत्ययों के अनुबन्ध जानना चाहिये। उणादिकों में यही शिक्षा करने योग्य है ॥ ३ ॥ १३१८ ॥

१३१९--भूतेपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

भूतकाल में भी उण् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं। जैसे वृत्तमिदं वर्त्म। चरितमिति। चर्म। जो वर्त्त गया और जाना गया वा चरित्र होगया वह वृत्त और चर्म कहाता है। यह वृतु और चर भूतकाल में उणादिगणस्थ मनिन् प्रत्यय होता है ॥ १३१९ ॥

१३२०--भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

भविष्यत्काल में (गमिन्) आदि उणादि प्रत्ययान्त शब्द देखे जाते हैं। ग्रामं गमी। यहां गम्लृ से उणादिस्थ इनि प्रत्यय भविष्यत्काल में होता है ॥ १३२० ॥

१३२१--भविष्यतीत्यनद्यतन उपसंख्यानम् ॥

भविष्यत्काल में गम्यादिकों के विधान में अनद्यतन का उपसंख्यान करना चाहिये। श्वो ग्रामं गमी। कल के दिन ग्राम को जाने वाला है ॥ १३२१ ॥

१३२२--दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

दाश और गोघ्न ये उणादिप्रत्ययान्त शब्द संप्रदान कारक में निपातन हैं। दाशन्तियच्छन्ति यस्मै स दाशः। गौर्हन्यते यस्मै स गोघ्नः ॥ १३२२ ॥

१३२३--भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीम आदि उणादिप्रत्ययान्त शब्द अपादान कारक में जानने चाहिये। बिभेत्यस्मादिति भीमः। भीष्मः इत्यादि ॥ १३२३ ॥

१३२४--ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

संप्रदान अपादान से अन्यत्र अर्थात् और कारकों में उण् आदि प्रत्यय हों। जि, जयतीति, जायुः इत्यादि ॥ १३२४ ॥

१३२५--तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो तो भविष्यत्काल में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हों (भुज + तुमुन् + सु + गच्छति=) यहां तुमुन् के (उ, न,) इन की इत् संज्ञा और लोप होकर ॥ १३२५ ॥

१३२६--कृन्मेजन्तः ॥ अ० ॥ १ । १ । ३९ ॥

मान्त और एजन्त जो कृत्प्रत्यय तदन्त जो शब्द सो अव्यय संज्ञक हों । इस से अव्यय संज्ञा हो जाती है । भोक्तुं गच्छति । पठितुं गच्छति । सभां द्रष्टुं गच्छति । यहां (१३२५) सूत्र में जो ण्वुल् प्रत्यय का ग्रहण किया है इस से जानना चाहिये कि तुमुन् के विषय में वासरूप विधि से तृजादिक नहीं होते हैं क्योंकि जो तृजादिक होते तो वासरूप विधि से ण्वुल् (८७४) हो ही जाता ॥ १३२६ ॥

१३२७--समानकर्तृकेषु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५८ ॥

इच्छा अर्थवाले समानकर्तृक धातु समीपवर्ती हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । इच्छति भोक्तुम् । कामयते भोक्तुम् । भोक्तुं वाञ्छति । समानकर्तृकग्रहण से यहां न हुआ। पठतं देवदत्तमिच्छति विष्णुमित्रः । अक्रियार्थोपपद के लिये यह सूत्र है । इच्छत्येवं भोक्तुम् । इस से यहां भी तुमुन् होता है ॥ १३२७ ॥

१३२८--शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६५ ॥

शक आदि धातु उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । शक्लृ, शक्नोति भोक्तुम् । ञिधृषा, धृष्णोति भोक्तुम् । ज्ञा, जानाति भोक्तुम् । ग्लै, ग्लायति भोक्तुम् । घट, घटते भोक्तुम् । रभ, भोक्तुमारभते । लभ, लभते भोक्तुम् । क्रम, भोक्तुं क्रमते । सह, भोक्तुं सहते । अर्ह, भोक्तुमर्हति । अस्त्यर्थ—अस, भू, विद । भोक्तुमस्ति । भोक्तुम् भवति । विद्यते भोक्तुम् । यह भी अक्रियार्थोपपद के लिये सूत्र है । शक्यमेवं भोक्तुम् । यहां भी तुमुन् होता है ॥ १३२८ ॥

१३२९--पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६६ ॥

परिपूर्णता को कहने वाले अलमर्थ (सामर्थ्यवचन) उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । पर्याप्तो भोक्तुम् । अलम्भोक्तुम् । भोक्तुम् पारयति । भोक्तुं कुशलः । पर्याप्तिवचनग्रहण से यहां न हुआ । अलं कृत्वा । अलमर्थग्रहण से यहां न हुआ पर्याप्तम्भुङ्क्ते । यहां भोजन करने वाले की प्रभुता गम्यमान है ॥ १३२९ ॥

१३३०--कालसमयवेलासु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६७ ॥

काल, समय, और वेला ये शब्द उपपद हों तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । कालो भोक्तुम् । भोक्तुं वेला । भोक्तुं समयः । यहां अष्टाध्यायी के क्रम से (७८९) सूत्र में से प्रैष, अतिसर्ग प्राप्तकाल इन अर्थों का भी संबंधानुवर्तन है अर्थात् प्रैषादि अर्थों के ही विषय में यह तुमुन् होता है । इस से यहां न हुआ । कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ॥ १३३० ॥

१३३१--भाववचनाश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११ ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो तो धातु से भविष्यत्काल में भाववचन (भावाधिकार १३३२ विहित) घञ् आदि प्रत्यय हों । यागाय याति । पाठाय गच्छति । पुष्टये प्रयतते । यज्ञ करने को वा पढ़ने को जाता और पुष्टि के लिये उत्तम यत्न करता है । यहां कर्म में चतुर्थी (कारकीय ६१) से होती है । वचनग्रहण इस लिये है कि जिस २ प्रकृति और नियम से जो २ प्रत्यय भावाधिकार में कहा है वह २ इस विषय में उन्हीं नियमों से हो । यद्यपि सामान्यविहित भाववचन क्रियार्थक्रिया के विषय में हो जाते परन्तु यहां वासरूपविधि के न होने से क्रियार्थोपपद विषयक तुमुन् के बाधने से नहीं होते हैं इसलिये यह (१३३१) सूत्र कहा ॥ ३३१ ॥

१३३२ — अण् कर्मणि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२ ॥

क्रियार्थाक्रिया और कर्म उपपद हो तो धातु से भविष्यत् काल में अण् प्रत्यय हो । यहां चकार कर्मसन्नियोग के लिये है अर्थात् यहां कर्म और क्रियार्थाक्रिया साथ रहें वहां यह अण् हो । काण्डानि लवितुं गच्छति,काण्डलावो गच्छति । अश्वं दातुं वूजति,अश्वदायो वूजति । परत्व से यह कादिकों (१००१) को बाधता है ॥ १३३२ ॥

१३३३ — पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६ ॥

पद आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । यहां से तीनों काल में प्रत्यय होते हैं किन्तु भविष्यत्काल की निवृत्ति है । पद्यतेऽसौ पादः रुजत्यसौ रोगः । विशत्यसौ वेशः । इसी प्रकार पत्स्यते, अपादि वा पादः । इत्यादि जानना चाहिये ॥ १३२३ ॥

१३३४ — वा० — स्पृश उपतापे ॥

उक्त घञ् प्रत्यय स्पृश धातु से उपताप अर्थ में हो यह कहना चाहिये । स्पृशतीति, स्पर्शः उपतापः । कष्ट कहाता है उपतापग्रहण से यहां न हुआ । कम्बलस्य स्पर्शः कम्बलस्पर्शः यहां पचाद्यच् (६७५) हो जाता है ॥ १३३४ ॥

१३३५ — सृ स्थिरे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७ ॥

सृ धातु से स्थिर कर्त्ता में घञ् प्रत्यय हो । स्थिर शब्द से चिरकालस्थायी का ग्रहण है । यश्चिरं तिष्ठन् कालान्तरं सरति प्राप्नोति,स सारः । जो चिरकाल ठहरा हुआ कालान्तर को प्राप्त होता है वह सार कहाता है । स्थिरग्रहण से यहां न हुआ । सर्त्ता सारकः (९७४) ॥ १३३५ ॥

१३३६ — वा० — व्याधिमत्स्यबलेष्विति वक्तव्यम् ॥

व्याधि, मत्स्य और बल अर्थ में सृ धातु से घञ् प्रत्यय कहना चाहिये । अत्यन्तं सरति, अतिसारो व्याधिः । विविधं सरति, इतस्ततो जलेऽटति, विसारो मत्स्यः । शाल इव सरति, शालसारः । खदिरसारः । बलम् ॥ १३३६ ॥

१३३७—भावे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १८ ॥

भाव वाच्य हो तो धातु से घञ प्रत्यय हो । यहां यह जानना चाहिये कि क्रियासामान्यवाची भू धातु है इस से अर्थ निर्देश किया हुआ सर्वधातुविषयक होता है । भाव अर्थात् धात्वर्थ सो भी धातु से ही कहा जायगा इसलिये धातु के सिद्ध प्रयोग से जो धात्वर्थ निष्पन्न होता है वह वाच्य होतो घञ् होता है जैसे । कारः । हारः । इत्यादि ॥१३३७॥

१३३८ — स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४७॥

घञ् प्रत्यय परे होतो स्फुर, स्फुल इन धातुओं के एच् के स्थान में आकारादेश हो। स्फारः । स्फालः ॥ १३३८ ॥

१३३९ — इकः काशे ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२३ ॥

काश उत्तरपद परे हो तो इगन्त ही उपसर्ग को दीर्घादेश हो । नीकाशः । अनूकाशः यहां [काशृ] दीप्तौ धातु से घञ् हुआ है । इगन्त ग्रहण से यहां दीर्घ नहीं होता । प्रकाशः ॥ १३३९ ॥

१३४०—स्यदोजवे ॥ अ ॥ ६ । ४ । ४८ ॥

घञ् प्रत्यय परे हो और जव (वेग) अभिधेय हो तो स्यद, यह निपातन है । गोस्यदः । यहां [स्यन्दू] प्रस्रवणे । धातु से घञ् प्रत्यय, नलोप और वृद्धि (१२६) का अभाव निपातन है । जव ग्रहण से । घृतस्यन्दः । यहां नलोप नहीं होता ॥ १३४० ॥

१३४१ — अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ॥ अ० ॥६। ४।२४॥

नलोपाविषय में अवोद, एध, ओद्म, प्रश्रथ, हिमश्रथ, ये निपातन हैं । अवोदः ।

यहां अवपूर्वक[उन्दी, क्लेदने] धातु से घञ् प्रत्यय के परे नलोप निपातन है । एधः । यहां [ञिइन्धी, दीप्तौ] से घञ् प्रत्यय के परे न लोप और गुणादेश निपातन है । अन्यथा (५५३) सूत्र से गुणप्रतिषेध प्राप्त है । ओद्मः । यहां [उन्दी] धातु का नलोप और गुणादेश उणादिगणस्थ मन् प्रत्यय के परे निपातन है । प्रश्रथः । यहां श्रन्थ धातु के नकार का लोप और वृद्धि का न होना निपातन है । इसी प्रकार हिमपूर्वक श्रन्थ से । हिमश्रथः । सिद्ध होता है ॥ १३४१ ॥

१३४२ — अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥अ० ॥३।३। १९॥

कर्त्ताभिन्न कारक में भी संज्ञाविषय में घञ् प्रत्यय हो । प्रसीव्यत इति प्रसेवः । आहरन्ति रसं यस्मात्स आहारः । अकर्त्तृ ग्रहण से यहां न हुआ [मिष, स्पर्द्धायाम्] मिषत्यसौ, मेषः । मेढ़ा का नाम है यहां अच् हो जाता है । संज्ञाग्रहण से यहां न हुआ॥ कर्त्तव्यः कटः । गन्तव्यो मार्गः । संज्ञा से अन्यत्र भी घञ् होने के लिये चकार है इस से यहां भी होता है । को लाभो भवता लब्धः ॥ १३४२ ॥

१३४३ — घञि च भावकरणयोः ॥अ०॥६।४।२७ ॥

भावकरणवाची घञ् प्रत्यय परे हो तो रञ्ज धातु के उपधानकार का लोप हो । भाव, में । रञ्जनं रागः । करण में रज्यतेऽनेनेति, रागः । भावकरणग्रहण से यहां नलोप न० । रञ्जत्यस्मिन्निति रङ्गः । यहां से आगे अष्टाध्यायीकेक्रम में (कृत्यल्युटोबहु-लम्)सूत्र पर्य्यन्त (भावे,अकर्त्तरि,कारके) इन पदों का अधिकार है ॥ १३४३ ॥

१३४४ — परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ॥ अ० ॥३। ३ ।२० ॥

परिमाण का कथन हो तो सब धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । ।चिञ्, एकस्तण्डुलनि-चायः तण्डुलानां निचायस्तण्डुलनिचायः *। पूञ्, द्वौ शूर्पनिष्पावौ [कृ] विक्षेपे । द्वौ कारौ । त्रयः काराः । परिमाणाख्या ग्रहण से यहां न हुआ । निश्चयः ॥ १३४४ ॥

१३४५--वा०--दारजारौ कर्त्तरि णिलुक् च ॥

दार,जार ये दोनों प्रयोग कर्त्ता में कहने चाहिये और इनके विषय में णिच् प्रत्यय

*यह चावलों की ढेरी अर्थात् मन आदि परिमाण से पूर्ण है । जो शूर्प से निरन्तर शुद्ध किया जाय वह शूर्पनिष्पाव कहाता । दो शूर्पनिष्पाव अर्थात् दो बार से शूर्प से जितना शुद्धहो सके उतना धान्य है । दो कार अर्थात् दो बार शूर्प आदि से किराजाय उतना धान्य है ।

का लुक् भी कहना चाहिये [दॄ] विदारणे । दारयन्तीति, दाराः [जॄष्] वयोहानौ जारयन्तीति जाराः ॥ १३४५ ॥

१३४६—वा०—करणे वा ॥

अथवा करण कारक में दार जार शब्द कहने चाहिये । इस पक्ष में णिलुक् नहीं है । दीर्य्यन्ते तै र्दाराः । जीर्य्यन्ति तै र्जाराः ॥ १३४६ ॥

१३४७—इङश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २१ ॥

इङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । यह वक्ष्यमाण अच् का अपवाद है । उपेत्यस्मादधीत इत्युपाध्यायः । यहां [इङ्] धातु से अपादान में घञ् प्रत्यय है ॥ १३४७ ॥

१३४८—वा०—इङश्चेत्यपादानेस्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष् ॥

(इङश्च) इस विषय में स्त्रीलिङ्ग में घञ् प्रत्यय का उपसंख्यान करना और उस घञ् प्रत्यय से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये। उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी, उपाध्याया (स्त्रैण०८९) ॥ १३४८ ॥

१३४९—वा०—शॄ वायुवर्णनिवृतेषु ॥

(शॄ) इस धातु से वायु, वर्ण निवृत (आवरण--आच्छादन) इन अर्थों में घञ् प्रत्यय कहना चाहिये (शॄ) हिंसायाम् । शृणात्यनेनेति शारो वायुः । करण में घञ् है । शीर्य्यते चित्रीक्रियते ऽनेनेति शारो वर्णः । गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः । नशीर्य्यते निव्रियते आच्छाद्यतेऽनेनेति, नीशारः । निवृतम् । (अकृतनीशारः) जिसने छप्पर आदि नहीं छवाया वह पुरुष प्रायः करके शिशिर ऋतु में गौ के तुल्य दुबला होजाता है ॥ १३४९ ॥

१३५०—उपसर्गे रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २२ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो रु धातु से घञ् प्रत्यय हो । संरावः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । रवः । यहां (१३८९) अप् हो जाता है ॥ १३५० ॥

१३५१—समि युद्रुदुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २३ ॥

सम् उपपद हो तो यु, द्रु, दु, इन इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । सं यूयते मिश्रीक्रियते गुड़ादिभिरिति संयावः । मीठी पूड़ीआदि का नाम है । सन्द्रावः । सन्दावः ॥ १३५१ ॥

१३५२--श्रिणीभुवोनुपसर्गे ॥ अ० ३ । ३ । २४ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो श्रि, णी, भू इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । श्रायः। नायः । भावः । उपसर्गनिषेध से यहां न हुआ । प्रश्रयः । प्रणयः । प्रभवः (प्रभावः) यह तो प्रादिसमास से होता है तथा (नयः पृथिवीपतेः) यह कृत् संज्ञकों के बहुलभाव से होता है ॥ १३५२ ॥

१३५३--वौ क्षुश्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २५ ॥

वि उपपद हो तो क्षु, श्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । विक्षावः विश्रावः वि ग्रहण से यहां न हुआ । क्षवः । श्रवः ॥ १३५३ ॥

१३५४--अवोदोर्नियः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २६ ॥

अव, उद् ये उपसर्ग उपपद हों तो नी धातु से घञ् प्रत्यय हो । अवनायः । नीचे को पहुंचाना । उन्नायः । ऊपर को पहुंचाना ॥ १३५४ ॥

१३५५--प्रे द्रुस्तुस्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २७ ॥

प्र उपपद हो तो द्रु, स्तु, स्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रस्रावः। प्र ग्रहण से यहां न०। द्रवः । स्रवः । स्तवः । यहां वक्ष्यमाण अप् (१३८९) हो जाता है ॥ १३५५ ॥

१३५६--निरभ्योः पूल्वोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २८ ॥

निर् अभि ये यथासंख्य उपपद हों तो पू लू, इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । [पू] यह सामान्य [पूङ् पूञ्] दोनों का ग्रहण है निर्- पू, निष्पूयते शूर्पादिभिर्यः स, निष्पावः । यह किसी धान्यविशेष का नाम है । अभिलावः ॥ १३५६ ॥

१३५७--उन्न्योर्ग्रः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २९ ॥

उद् और नि उपपद हों तो गॄ धातु से घञ् प्रत्यय हो [गॄ]शब्दे [गॄ]निगरणे । उद्+गॄ, उद्गारः समुद्रस्य । नि+गॄ, निगारो मनुष्याणाम्। उद्,नि ग्रहण से यहां न हुआ । गरः । अप् (१३८९) हो जाता है ॥ १३५७ ॥

१३५८--कॄ धान्ये ॥ अ० ३ । ३ । ३० ॥

धान्य अर्थ में वर्त्तमान जो उद् नि पूर्वक कॄ धातु उस से घञ् प्रत्यय हो [कॄ] विक्षेपे । उत्कारो निकारो वा धान्यस्य । धान्य का ऊपर को किराना वा एक तार किराना धान्य से अन्यत्र भैक्षयोत्करः । पुष्पनिकरः । फूलों का समूह ॥ १३५८ ॥

१३५९–यज्ञे समि स्तुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३१ ॥

यज्ञ अर्थ में सम् पूर्वक स्तु धातु से घञ् प्रत्यय हो । समेत्य स्तुवन्ति छन्दोगा यस्मिन् देशे स देशः संस्तावः । यहां अधिकरण में घञ् प्रत्यय है । यज्ञ से अन्यत्र संस्तवः परिचय है ॥१३५९॥

१३६०–प्रे स्त्रोऽयज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३२ ॥

प्र उपपद हो तो यज्ञभिन्न अर्थ में स्तृञ् धातु से घञ्प्रत्यय हो [स्तृञ्] आच्छादने। छन्दसां प्रस्तारः । मणिप्रस्तारः । अयज्ञग्रहण से यहां न हुआ । बर्हिषः प्रस्तार । कुशों की मूठी ॥१३६० ॥

१३६१–प्रथने वावशब्दे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३३ ॥

अशब्दविषयक प्रथन (विस्तीर्णता) गम्यमान हो और वि उपपद हो तो स्तृञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । पटस्य विस्तारः । प्रथन ग्रहण से यहां न० । अयं तृणविस्तरः । यह तृण अर्थात् कुश आदि का बिछावना है। अशब्दग्रहण से यहां न हुआ । वचसां विस्तरः । ग्रन्थविस्तरः । इन में अगला अप् प्रत्यय (१३८९)हो जाता है ॥१३६१॥

१३६२–छन्दोनाम्नि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३४ ॥

छन्दोनाम वाच्य हो तो विपूर्वकस्तृञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो ।यहां छन्दस् शब्द से गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण है विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणि, विष्टारः विष्टारं च तत् पङ्क्तिश्छन्दः विष्टारपंक्तिश्छन्दः । विष्टारबृहती छन्दः । यहां (८४०) सूत्र षत्व० ॥१३६२॥

१३६३–उदि ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३५ ॥

उद् उपपद हो तो ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो । उद्ग्राहः ॥१३६३॥

१३६४–वा०–उद्ग्राभनिग्राभौ च छन्दसि स्रुगुद्यमन-निपातनयोः॥

स्रुच् (हवन करने के पात्र) का उठाना, धरना अर्थ हो तो उद्ग्राभ, निग्राभ ये निपातन हैं । यहां उद् नि पूर्वक ग्रह धातु से भाव में घञ् और उस के हकार को भकार आदेश हुआ है ॥१३६४॥

१३६५–समि मुष्टौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३६ ॥

सम् उपपद हो तो मुष्टिविषयक (पञ्जालड़ाने) अर्थ में ग्रहधातु से घञ् प्रत्यय

हो। अहो मल्लस्य संग्राहः। अहो मुष्टिकस्य संग्राहः। मुष्टिग्रहण से यहां न हुआ। द्रव्यस्य संग्रहः ॥१३६५॥

१३६६–परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥ अ० ॥३।३।३७॥

द्यूत अर्थ में परिपूर्वक णीञ् और अभ्रेष (उचित करने) अर्थ में निपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो। द्यूत, परिणयनं, परिणायः। परिणायेन शारान् हंति सब ओर से एर फेर से पाशाओं को छीनना झपटता है। अभ्रेष, एषोत्र न्यायः। द्यूताभ्रेष से अन्यत्र। परिणयो विवाहः। न्ययो नाशः॥१३६६॥

१३६७–परावनुपात्यय इणः ॥ अ० ॥ ३। ३। ३८॥

अनुपात्यय अर्थ में परिपूर्वक इण् धातु से घञ् प्रत्यय हो। तव पर्य्यायः। मम पर्य्यायः। अनुपात्ययग्रहण से यहां न हुआ। कालस्य पर्ययः। काल का व्यतीत होना ॥१३६७॥

१३६८–व्युपयोः शेतेः पर्याये ॥ अ० ॥ ३। ३। ३९॥

पर्याय गम्यमान हो तो वि, उप पूर्वक शीङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो। तव विशायः। तुम्हारा जागना। मम विशायः। मेरा जागना। तव राजोपशायः। तुम्हारा राजा के समीप सोना। मम राजोपशायः। मेरा राजा के समीप सोना। पर्यायग्रहणसे यहां न हुआ विशयः। उपशयः ॥ १३६८॥

१३६९–हस्तादाने चेरस्तेये ॥ अ० ॥ ३। ३। ४०॥

अस्तेय चोरी से अन्यत्र जो हाथ से ग्रहण करना उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय हो। पुष्पप्रचायः। फलप्रचायः। पुष्प, फलों का हाथ से इकट्ठा करना। हस्तादान से अन्यत्र। दण्डेन फलसंचयं करोति। यहां घञ् नहीं होता अस्तेयग्रहण से यहां नहीं होता। चौर्येण फलप्रचयः ॥१३६९॥

१३७०–निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ॥ अ० ॥ ३। ३। ४१॥

निवास (अच्छे प्रकार जिस में वसें) चिति (जो चिनीजाना) शरीर, उपसमाधान (ढेर लगाना) इन अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और धातु के आदि चकार को ककार आदेश हो। निवास, निवसत्यस्मिन्निति, निकायः। कश्मीरनिकायः। चिति, आचीयतेऽसावित्याकायः। जो अच्छे प्रकार चिना जाय वह आकाय कहिये।

आकायमग्निं चिन्वीत । शरीर । चीयतेस्मिन् सक्थ्यादिकमिति कायः । उपसमाधान, धान्यनिकायः ॥१३७० ॥

१३७१—सङ्घे चानौत्तराधर्य्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४२ ॥

अनौत्तराधर्य (ऊपर नीचे न होना) विषयक जो संघ (प्राणियों का एकत्र होना) उस अर्थ में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय और उस के आदिभूत चकार को क आदेश हो । ब्राह्मणनिकायः । भिक्षुनिकायः । वैयाकरणनिकायः अनौत्तराधर्य ग्रहण से यहां न हुआ । सूकरनिकायः । प्रायः सूकर सोते हुए एक दूसरे के ऊपर भी हो रहते हैं । प्राणिविषयकसंघ लेने से यहां न० । परिहारसमुच्चयः ॥ १३७१ ॥

१३७२—कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४३ ॥

कर्मव्यतिहार (क्रियाका परस्पर होना) गम्यमान हो तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से णच् प्रत्यय हो । यह भाव में होता है (वि+अव+ क्रुश्+णच्) यहां (स्त्रै०-८९२) सूत्र से स्वाथ में तद्धित् अञ् प्रत्यय होकर व्यवक्रुश+अ+अ=) इस अवस्था में (स्त्रै०९१८) सूत्र से ऐच् प्राप्त हुआ उस का (स्त्रै० ९१९) निषेध हो कर (स्त्रै० १६७) सूत्र से वृद्धि तथा (स्त्रै०३५) सूत्र से ङीष् प्रत्यय हो जाता ह । व्यावक्रोशी । व्यावहासी । स्त्रीग्रहण से यहां न हुआ । व्यतिपाको वर्त्तते । कर्मव्यतिहार से अन्यत्र । क्रोशो वर्त्तते ॥ १३७२ ॥

१३७३—अभिविधौ भाव इनुण् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४४ ॥

अभिविधि (अभिव्याप्ति अर्थात् क्रिया और गुणों से परिपूर्ण सम्बन्ध) अर्थ हो तो धातु से भाव में इनुण् प्रत्यय हो । समन्ताद् रवणं, समन्ताद् रूयत इति वा सांराविणम् । यहां सम्पूर्वक [रु] धातु से इनुण् और उस के परे धातु को वृद्धि (६०) तदनन्तर(संराविन्)शब्द से स्वार्थमें अण् और अण् के परे आदि अच् को(स्त्रै० १६७) वृद्धि और अण् के पूर्व को प्रकृतिभाव (९०१) सूत्र से हो जाता है । सांराविणं वर्त्तत । अभिविधिग्रहण से यहां न हुआ । संरावः । संद्रावः । इत्यादिकों में घञ् हो जाता है । भाव वर्त्तमान था फिर भाव इस लिये है कि वासरूपविधि से अभिविधिविषयक भाव में घञ् न हो परन्तु वक्ष्यमाण ल्युट् प्रत्यय तो होता है ॥ १३७३ ॥

१३७४—आक्रोशेवन्योर्ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४५ ॥

आक्रोश(अच्छे प्रकार कोशना) अर्थ गम्यमान हो तो अव,नि पूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो । अवग्राहो वृषल तेभूयात्।निग्राहो हन्त ते वृषल भूयात् । आक्रोश-

ग्रहण से यहां न हो । अवग्रहः पदस्य पद । का विग्रह । निग्रहश्चोरस्य । चोर का बान्धना ॥ १३७४ ॥

१३७५-प्रे लिप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४६ ॥

लाभ की इच्छा गम्यमान हो तो प्रपूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय हो। पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः । लिप्सा ग्रहण से यहां न हुआ । प्रग्रहः पात्राणाम् ॥ १३७५ ॥

१३७६-परौ यज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४७ ॥

परि उपसर्ग उपपद हो तो ग्रह धातु से यज्ञ अर्थ में घञ् प्रत्यय हो । उत्तर परिग्राहः । स्फेनवेदेर्भवति । यज्ञ से अन्यत्र । परिग्रहो देवदत्तस्य ॥ १३७६ ॥

१३७७-नौ वृ धान्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४८ ॥

धान्य अभिधेय हो और नि उपसर्ग उपपद हो तो वृञ् वा वृङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । नीवाराः । ब्रीहयः । यहां (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्) इस सूत्र से नि को दीर्घ होगया धान्य से अन्यत्र (निवरा कन्या) यहां अगला अप् (१३८१) प्रत्यय हो जाता है ॥ १३७७ ॥

१३७८-उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४९ ॥

उद् उपपद होतो श्रिञ् यु पू द्रु इन धातुओं से घञ्प्रत्यय हो । श्रिञ्, उच्छ्रायः । यु, उद्यावः । पूञ्-पूङ् उत्पावः । द्रु, उद्द्रावः ॥ १३७८ ॥

१३७९-विभाषाङि रुप्लुवोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५० ॥

आङ् उपपद होतो रु और प्लु धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो । आरावः, आरवः आप्लावः, आप्लवः ॥ १३७९ ॥

१३८०-अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५१ ॥

वर्षा का प्रतिबन्ध अभिधेय हो और अवउपपद हो तो ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो । अपने समय में हो रही जो वर्षा है उस का किसीकारण से जो अभाव होना उस को वर्षप्रतिबन्ध कहते हैं । अवग्राहो देवस्य । अवग्रहो देवस्य। वर्षप्रतिबन्ध ग्रहण से यहां न हुआ । अवग्रहः पदस्य ॥ १३८० ॥

१३८१-प्रे वणिजाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५२ ॥

वणिज् सम्बन्धी प्रत्ययार्थ होतो प्रपूर्वक ग्रह धातु से विकल्प करके घञ् प्रत्यय हो। तुलाप्रग्राहेण चरति । तुलाप्रग्रहेण वा चरति । यहां वणिक्संबंधी तुलासूत्र का

ग्रहण है अर्थात् तुला (तखरी–तक आदि) जिस से ग्रहण करी जाय उस सूत्र के साथ चलता है। वणिग्ग्रहण से यहां न हुआ प्रग्रहो धमस्य ॥ १३८१ ॥

१३८२–रश्मौ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५३ ॥

रश्मि अभिधेय हो और प्रशब्द उपपद होतो ग्रहधातु से विभाषा घञ् प्रत्यय हो। प्रग्रहः । प्रग्राहः । रथ में जुड़े हुये घोड़ों की वागों को कहते हैं ॥ १३८२ ॥

१३८३–वृणोतेराच्छादने ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५४ ॥

प्र उपपद हो तो वृञ् धातु से आच्छादन अर्थ में घञ् प्रत्यय हो । प्रवारः । प्रवरः । आच्छादन ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवरा (१३८६) गौः ॥ १३८३ ॥

१३८४–परौ भुवोऽवज्ञाने ॥ अ० । ३ । ३ । ५५ ॥

परि उपपद हो तो अवज्ञान (तिरस्कार) अर्थ में भू धातु से घञ् प्रत्यय हो। परिभावः । परीभावः (उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्) इस से दीर्घ । परिभवः । अवज्ञान से अन्यत्र । परितः सर्वतो भवनं परिभवः । यहां अप् हो जाता है ॥ १३८४ ॥

१३८५–एरच् ॥ अ० । ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्णान्त धातु से अच् प्रत्यय हो। चिञ्, चयः । जि, जयः । क्षि, क्षयः । भाव और कर्त्ताभिन्न कारक का अधिकार है इस लिये इस प्रकरण के उक्त अनुक्त सब प्रत्यय भाव वा कर्त्ताभिन्न कारकों में प्रायः होते हैं ॥ १३८५ ॥

१३८६–वा०–भयादीनामिति वक्तव्यम् ।

भयादिशब्दों की सिद्धि अच् प्रत्यय से कहनी चाहिये । ञिभी, भयम् । वृषु, वर्षम् । नपुंसकलिंग भाव में क्त प्रत्यय कहेंगे उसकी निवृत्ति के लिये यह वार्त्तिक है परन्तु (वृषभो वर्षणात्) इस भाष्यवचन से वर्षण शब्द तो भाव में होता ही है ॥ १३८६ ॥

१३८७–वा०–कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥

कल्पि आदि धातुओं से अच् प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये [कल्पि] यह णिजन्त [कृपू] सामर्थ्य है (कृपू + णिच् + घञ् + सु=) कल्पः । अर्थः । मन्त्रः । ये भी णिजन्तों से हैं । णिजन्त सब इवर्णान्त हो जाते हैं इस लिये कल्पि आदि से अच् * प्राप्त था उस के प्रतिषेध में घञ् हो जाता है ॥ १३८७ ॥

---

* किन्हीं नवीनपन्था वालों का वह भी सिद्धान्त है कि (एरच्) यह अणयन्तों से होता है णयन्तों से नहीं होता। सो उन का भाष्यविरुद्ध कथन है ।

१३८८—वा०—जवसवौ छन्दसि वक्तव्यौ ॥

वेदविषय में जव, सव ये अच् प्रत्ययान्त कहने चाहिये [जु] सौत्र धातु है उस से (जु+अच्+सु=) जवः । होता है । ऊर्वोरस्तु मे जवः । [षु] वा [षू] धातुसे अच् हो कर । सवः । होता है । अयं मे पञ्चौदनः सवः । यह अच् विधान अन्तोदात्त (सौवर ३४) स्वर के लिये है क्योंकि (जवः, सवः) प्रयोग अप् से भी सिद्ध थे ॥ १३८८ ॥

१३८९—ऋदोरप् ॥ अ० ३ । ३ । ५७ ॥

ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय हो । कॄ, करः । शॄ, शरः । यु, यवः । लू, लवः । पू, पवः (ऋदु०) यहां ऋ और उकार का अलग२ उच्चारण होने के लिये दकार के साथ निर्देश है किन्तु तपर करण नहीं है ॥ १३८९ ॥

१३९०—ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५८ ॥

ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, इन से अप् प्रत्यय हो । यह घञ् और अच् का अपवाद है । ग्रह, ग्रहः । वृ, वरः । दृ, दरः । निस्+चि, निश्चयः । गम्लृ, गमः ॥ १३९० ॥

१३९१—वा०—वशिरण्योश्चोपसंख्यानम् ॥

अप् प्रत्यय के विधान् में वश और रण धातु की भी गणना करनी चाहिये वशनं वशः । सवशं सैन्धवम् । रणऽन्त्यस्मिन्निति, रणः । धनंजयं रणे रणे॥ १३९१ ॥

१३९२-वा०—घञर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम् ॥

स्था, स्ना, पा, व्यध, हन, युध आदि धातुओं के लिये घञर्थ (भाव, कर्त्तृभिन्न कारक) में क प्रत्यय का विधान करना चाहिये । प्रतिष्ठन्तेस्मिन् धान्यानीति, प्रस्थः। प्रस्थे हि भवतः शृंगे । प्रस्नान्ति अस्मिन्निति प्रस्नः । प्रपिबन्त्यस्यामिति, प्रपा । आविध्यन्ति तेनाविधः । विघ्नन्ति तस्मिन्मनांसि, विघ्नः। आयुध्यन्ते तेनायुधम् ॥ १३९२ ॥

१३९३—वा०—द्विर्वचनप्रकरणे कृञादीनां क उपसंख्यानम् ॥

क प्रत्यय के परे द्विर्वचनप्रकरण में कृञ् आदि धातुओं की गणना करनी चाहिये। अर्थात् क प्रत्यय के कृञादिकों को द्वित्व हो । यह वार्त्तिक ॥ अ० ॥६। १ । १२ । सूत्र के व्याख्यान में पढ़ा है (कृञ+क+सु=) चक्रम् (क्लिदू+क+सु=) चिक्लिदम् [क्रसु] ह्वरणदीप्त्योः (क्रसु+क+सु=) चक्रसः ॥ १३९३ ॥

१३९४–उपसर्गेऽदः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो अद धातु से अप् प्रत्यय हो (प्र+अद्+अप्+सु=) इस अवस्था में ॥ १३९४॥

१३९५–घञपोश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३८॥

घञ् और अप् प्रत्यय परे हो तो अद धातु को घस्लृ आदेश हो । घस्लृ आदेश होकर । प्रघसः ।जहां उपसर्ग पूर्व नहीं है वहां भी (अद्+घञ्+सु=) घासः। घञ के परे घस्लृ आदेश हो जाता है ॥ १३९५ ॥

१३९६–नौ ण च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६० ॥

नि उपपद हो तो अद धातु से ण और अप् प्रत्यय हो (नि+अद्+ण+सु=) न्यादः (नि+अद्+अप्+सु =) निघसः ॥ १३९६ ॥

१३९७–व्यधजपोरनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६१ ॥

उपसर्गभिन्न जो व्यध और जप धातु उन से अप् प्रत्यय हो । व्यधः।जपः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । आव्याधः । आजापः । यहां घञ् प्रत्यय(१३३७) हो जाता है ॥ १३९७ ॥

१३९८–स्वनहसोर्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६२ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो स्वन और हस धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । स्वनः । स्वानः । हसः । हासः । विकल्पपक्ष में घञ् हो जाता है । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां अप् नहीं होता । प्रस्वानः । प्रहासः ॥१३९८॥

१३९९–यमः समुपनिविषु च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६३ ॥

सम्, उप, नि, वि उपसर्ग उपपद हों वा नहीं तो यम धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । संयमः । संयामः । उपयमः । उपयामः । नियमः । नियामः । वियमः । वियामः । यमः । यामः।विकल्प पक्ष में घञ् हो जाता है ॥१३९९॥

१४००नौ गदनदपठस्वनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६४ ॥

नि उपसर्ग उपपद होतो गद, नद, पठ, स्वन इन धातुओं से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । निगदः । निगादः।निनदः । निनादः । निपठः । निपाठः । निस्वनः। निस्वानः ॥१४००॥

१४०१–क्वणोवीणायां च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६५ ॥

नि उपसर्ग उपपद हो वा न होतो क्वण धातु से तथा वीणाअ

धातु उससे अप् प्रत्यय विकल्प कर के हो । और भी उपसर्गों के ग्रहण के लिये वीणा अर्थविषयक से विधान है। कण,निक्कणः। निकाणः।कणः। काणः। वीणा अर्थ में प्रक्कणः । प्रकाणः । इन सब से अन्यत्र । अतिकाणो वर्त्तते ॥१४०१॥

१४०२–नित्यं पणः परिमाणे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६६॥

परिमाण गम्यमान हो तो पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय हो [पण] व्यवहारे स्तुतौ च । मूलकपणः । शाकपणः । बेचने आदि के लिये परिमाण से मूरी वा शाक आदि की जो गड्डिया बांधना उस को कहते हैं । परिमाण से अन्यत्र पाणः ॥ १४०२ ॥

१४०३–मदोऽनुपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६७ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो मद धातु से अप् प्रत्यय हो । विद्यामदः । धनमदः । कुलमदः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । उन्मादः । प्रमादः ॥ १४०३ ॥

१४०४–प्रमदसंमदौ हर्षे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६८ ।

प्रमद, संमद ये दोनों हर्ष अर्थ में निपातन हैं [मदी] हर्षे प्रमदः । संमदः । हर्षग्रहण से यहां न हुआ । प्रमादः । संमादः ॥ १४०४ ॥

१४०५–समुदोरजः पशुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६९ ॥

सम् और उद् उपसर्ग उपपद हों तो पशुविषय में वर्त्तमान अज धातु से अप् प्रत्यय हो [अज) गतिक्षेपणयोः, सम् पूर्वक अज धातु समुदाय अर्थ को कहता है। पशूनां समजः । पशुओं का समुदाय । पशूनामुदजः । पशुओं को प्रेरणा देना अर्थात् हांकना आदि । पशुग्रहण से यहां नहीं होता । ब्राह्मणानां समाजः । आर्य्यसमाजः । क्षत्रियाणामुदाजः ॥ १४०५ ॥

१४०६–अक्षेषु ग्लहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७० ॥

अक्षविषय में ग्रह धातु से अप् प्रत्ययान्त ग्लह यह निपातन है । अक्षस्य ग्लहः । पाशाओं का ग्रहण करना । ग्रह धातु से (१३९०) से अप् प्रत्यय सिद्ध है। तथापि उस के रेफ को लकारादेश करने के लिये यह निपातन किया है । अक्ष ग्रहण से यहां न हुआ । केशग्रहः ॥ १४०६ ॥

१४०७–प्रजने सर्त्तेः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७१

प्रजन (प्रथमगर्भधारण) विषय में सृ धातु से अप् प्रत्यय हो। गवामुपसरः, प्रथम

गर्भधारण कराने के लिये गौ के समीप बैल का जाना, अवसरः। प्रसरः। इत्यादि तो (१४७५) सूत्र से होंगे ॥ १४०७ ॥

१४०८—ह्वः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥ अ० ॥ ३। ३। ७२ ॥

नि, अभि उप, वि ये उपपद हों तो ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो। नि+ह्वेञ्+अप्+सु=) निहवः। (अभि+ह्वेञ्+अप्+सु=) अभिहवः (उप+ह्वेञ्+अप्सु=) उपहवः (वि+ह्वेञ्+अप्+सु=) विहवः अन्यत्र (प्र+ह्वेञ्+घञ्+सु=) प्रह्वायः। घञ् होजाताहै ॥ १४०८ ॥

१४०९—आङि युद्धे ॥ अ० ॥ ३। ३। ७३ ॥

युद्ध अभिधेय होतो आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो। आहूयन्ते स्पर्द्धया भटा अस्मिन्निति, आहवः। युद्ध से अन्यत्र आह्वायः ॥ १४०९ ॥

१४१०—निपानमाहावः ॥ अ० ॥ ३। ३। ७४ ॥

जो निपान अभिधेय हो तो आहाव यह निपातन है। निपिबन्त्यस्मिन् जलमिति, निपानम्। जल धरने का स्थान। यहां आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय तथा उस को संप्रसारण और वृद्धि होना निपातन है ॥ १४१० ॥

१४११—भावेऽनुपसर्गस्य ॥ अ० ॥ ३। ३। ७५ ॥

भाव वाच्य होतो उपसर्गरहित ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो। ह्वानं हवः। हवे हवे शूरमिन्द्रम्। यहां भावग्रहण से प्रकृत कर्त्ता भिन्न कारक की अनुवृत्ति नहीं होती है ॥ १४११ ॥

१४१२—हनश्च वधः ॥ अ० ॥ ३। ३। ७६ ॥

उपसर्गरहित हन् धातु से भी अप् प्रत्यय और उस प्रत्यय के साथ हन् को वध आदेश भाव में हो। यहां चकार का सम्बन्ध आदेश के साथ नहीं है किन्तु आदेश तो अप् से द्वितीय विधान है सो हो ही जायगा इस से चकारग्रहण सप्रकरण के अनुसार दूसरा घञ् प्रत्यय भी होता है (हन्+अप्+सु=) वधः। वध आदेश अन्तोदात्त है इस से अनुदात्त (सौव० २४) अप् प्रत्यय के साथ एकादेश (संधि १२१) भी उदात्त ही (सौव० ८५) होता है (हन्+घञ्+सु=) घातः। वधो दस्यूनाम्। घातः शत्रूणाम् ॥ १४१२ ॥

१४१३—मूर्त्तौ घनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७७ ॥

मूर्त्ति (काठिनपन) वाच्य हो तो हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो । अभ्रघनः । बद्दलों की सघनता । दधिघनः । दधि की काठिनाई अर्थात् उस का अत्यन्त जमना । घन शब्द जब मूर्त्ति (काठिनाई) मात्र में होता है तो । घनं सैन्धवम् । घनं दधि । इत्यादि प्रयोग कैसे होंगे क्योंकि घन यह सैन्धव वा दधि का गुण हुआ । इसलिये गुण से गुणी की विवक्षा (घन शब्द से तद्धर्मनिष्ठ दधि आदि का कथन) हो तो उक्त प्रयोग होंगे ॥ १४१३ ॥

१४१४—अन्तर्घनो देशे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७८ ॥

देश अभिधेय हो तो अन्तर् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और उस को घन आदेश हो । अन्तर्घनः । यह वाहीकनामक देशों में किसी देश का नाम है । इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं । अन्तर्घणः । देश से अन्यत्र । अन्तर्घातः ॥ १४१४ ॥

१४१५-अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ ।७९॥

अगार (गृह) के एक देश में प्रघण,प्रघाण ये निपातन हैं । गृह के द्वार देश में दो कोठे होने चाहिये।एक भीतर दूसरा बाहर उन में से जो बाहर का कोठा है उस अर्थ में ये निपातन हैं । प्रविशद्भिर्जनैः प्रकर्षेण हन्यत इति प्रघणः । प्रघाणः । यहां कर्म्म में अप् तथा घञ् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है । अगारैकदेश से अन्यत्र । प्रघातः ॥ १४१५ ॥

१४१६-उद्घनोत्याधानम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८० ॥

अत्याधान (ऊपर स्थापन करना) गम्यमान हो तो उद्घन यह निपातन है । ऊर्ध्वं हन्यतेस्मिन् काष्ठानीति, उद्घनः । यह जिस काठ पर घर के दूसरे काठ को गढ़ते हैं उसका नाम है । यहां उद्पूर्वक हन् धातु से अप् और उसको घन आदेश निपातन है ॥ १४१६ ॥

१४१७-अपघनोऽङ्गम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८१ ॥

अङ्ग अभिधेय हो तो अपघन यह निपातन है अङ्ग शरीर के अवयव मात्र का नाम है परंतु यहां हाथ पैर का ग्रहण है । अपहन्त्यनेनेति, अपघनः । पाणिः पादो वा । यह अप पूर्वक हन् से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है । अन्यत्र । अपघातः ॥ १४१७ ॥

१४१८—करणेऽयो विद्रुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८२ ॥

अयस्, वि, द्रु, उपपद हों तो हन धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो । अयः (लोहः) हन्यतेनेनेति अयोघनः । विघनः । द्रुघनः । इस शब्द को पाठान्तर से भी मानते हैं । द्रुघणः (८७०) से णत्व हो जाता है ॥१४१८॥

१४१९—स्तम्बे क च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८३ ॥

स्तम्ब शब्द उपपद हो तो हन् धातु से करण में क और अप् प्रत्यय और अप् के संनियोग में हन् को घन आदेश हो । क, स्तम्बो हन्यतेऽनेन, स्तम्बघ्नः । अप्. स्तम्बघनः करण से अन्यत्र । स्तम्बस्य हननं, स्तम्बघातः ॥ १४१९ ॥

१४२०—परौ घः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८४ ॥

परि उपपद हो तो हन् धातु से करण में अप् प्रत्यय और हन् को घ आदेश हो । परितः सर्वतो हन्यतेऽनेनेति परिघः ॥ १४२० ॥

१४२१—परेश्च घाङ्कयोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । २२ ॥

घ और अङ्क शब्द परे हो तो परि के रेफ को विकल्प करके लकारादेश हो । परिघः । पलिघः । पर्य्यङ्कः । पल्यङ्कः । यहां (पारिभाषि० १) परिभाषा के अनुसार (घ) इस स्वरूप का ग्रहण है घसंज्ञा का ग्रहण नहीं है ॥ १४२१ ॥

१४२२—उपघ्न आश्रये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८५ ॥

आश्रय अर्थ में उपघ्न यह निपातन है । आश्रय शब्द से यहां सामीप्य का ग्रहण है । पर्वतेनोपहन्यते तत्सामीप्येन गम्यत इति, पर्वतोपघ्नः । ग्रामोपघ्नः । पर्वत, के निकट २ जाना । यहां उपपूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् की उपधा का लोप निपातन और कुत्व (३०४) सूत्र से होता है ॥ १४२२ ॥

१४२३—संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८६ ॥

गण (समूह) और प्रशंसा अर्थ में यथासंख्य कर के संघ, उद्घ ये निपातन हैं। संहननं संघः।गवां संघः।यहां सम्पूर्वक हन् से भाव में अप् प्रत्यय और टिलोप निपातन है । उत्कृष्टो हन्यते ज्ञायत इत्युद्घो मनुष्यः । यहां गतित्व से हन् धातु को ज्ञानार्थ मान कर उस से कर्म में अप् और पूर्ववत् टिलोप हो जाता है ॥ १४२३ ॥

१४२४—निघो निमितम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८७ ॥

निमित अभिधेय हो तो निघ यह निपातन हो । सब प्रकार से जो मित (परि-

पूर्णता को प्राप्त) हो वह निमित कहाता है । निर्विशेषेण हन्यन्ते ज्ञायन्त इति निघा वृक्षाः । निघाः शालयः । निघाः यवाः । निमित से अन्यत्र निघातः ॥ १४२४ ॥

१४२५—ड्वितः क्त्रिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८८ ॥

डु,जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में क्त्रि प्रत्यय हो।क्त्रेर्मप् नित्यम् । इस सूत्र में नित्यग्रहण से क्त्रि प्रत्यय विषयक विग्रह मप् से अलग नहीं होता जैसे। डुपचष् , पचेमन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । पचने से सिद्ध हो गया । [डुकृञ्] करणे कृत्रिमम् [डुवप्] बीज संताने । उप्त्रिमम् ॥ १४२५ ॥

१४२६—ट्वितोऽथुच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८९ ॥

टु जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में अथुच् प्रत्यय हो [टुवेपृ] कंपने। वेपनं वेपथुः । टुओश्वि श्वयथुः ॥ १४२६ ॥

१४२७-यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्॥ अ० ॥ ३ । ३।९०॥

भाव और अकर्त्ता कारक में यज आदि धातुओं से नङ् प्रत्यय हो यज, यजनं यज्ञः । टुयाचृ, याचनं याच्ञा [यती] प्रयत्ने । यत्नः [विच्छ] गतौ । विश्नः । यहां छ् को श् आदेश होजाता और नङ् के ङित् करण से गुण नहीं होता।प्रच्छ, प्रश्नः । यहां संप्रसारण (२८६) प्राप्त है सो (७९८) सूत्र में प्रश्न शब्द के पढ़ने से नहीं होता ॥ १४२७ ॥

१४२८—स्वपो नन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९१ ॥

स्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो [ञिष्वप्] स्वपनं स्वप्नः ॥ १४२८ ॥

१४२९—उपसर्गे घोः किः ॥ अ० ॥ ३ । ३ ।९२ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो घुसंज्ञकों से कि प्रत्यय हो प्रदानं, प्रदिः । प्रधानं प्रधिः । विधानं विधिः संधानं संधिः । अन्तर्धानं अन्तर्द्धिः । आधिः । व्याधिः ॥ १४२९ ॥

१४३०—कर्मण्यधिकरणे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९३ ॥

कर्म उपपद हो तो घुसंज्ञक धातुओं से अधिकरण में कि प्रत्यय हो।जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति जलधिः।वारिधिः । तोयधिः। पयोधिः।यशांसि धीयन्तेस्मिन्निति यशोधिः— इषुधिः॥१४३० ॥

१४३१—स्त्रियां क्तिन्॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में धातु से क्तिन् प्रत्यय हो । घञ्, अच् अप्, इन

सब का अपवाद है। डुकृञ्, करणं कृतिः। चिञ्, चितिः॥ १४३१॥

१४३२–वा०–क्तिन्नाबादिभ्यः॥

आप्लृ आदि धातुओं से भावादिकों में क्तिन् प्रत्यय हो। आप्तिः। राद्धिः। दीप्तिः यहां अङ् (१४४८) प्रत्यय प्राप्त था उस के बाधने के लिये क्तिन् का विधान है॥ १४३२॥

१४३३–वा०–श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे॥

श्रु, यज, इष ष्टुञ् इन धातुओं से करण में क्तिन् प्रत्यय कहना चाहिये। श्रूयतेऽनयेति, श्रुतिः। इज्यतेऽनयेति, इष्टिः। इष्यतेऽनयेति, इष्टिः। स्तूयतेऽनयेति, स्तुतिः॥ १४३३॥

१४३४–वा०–ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः॥

ग्लै, म्लै, ज्या, ओहाक् ओहाङ् इन धातुओं से नि प्रत्यय कहना चाहिये। ग्लानिः। म्लानिः। ज्यानिः। हानिः॥ १४३४॥

१४३५–वा०–ॠकारल्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावत्॥

ॠकारान्त और [लूञ] छेदने आदि गणपठित धातुओं से क्तिन् प्रत्यय को निष्ठा के तुल्य कहना चाहिये। कॄ, कीर्णिः। गॄ, । गीर्णिः। लूञ्, लूनिः। धूनिः। यहां क्तिन् के निष्ठावद्भाव से (ल्वादि०) सूत्र से निष्ठा के तुल्य क्तिन् के तकार को नकारादेश हो जाता है॥ १४३५॥

१४३६–स्थागापापचो भावे॥ अ०॥ ३॥ ३। ९५॥

स्था आदि धातुओं से स्त्रीलिंग विषयक भाव में क्तिन् प्रत्यय हो। यह अङ् का अपवाद है। ष्ठा, प्रस्थितिः। उपस्थितिः। संस्थितिः। [गै] शब्दे। संगीतिः। उद्गीतिः। पा, प्रपीतिः। डुपचष्, पक्तिः॥ १४३६॥

१४३७–मंत्रेवृषेषपचमनविद्भूवीरा उदात्तः॥ अ०॥ ३॥ ३। ९६॥

मंत्रविषय में वृष आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय हो और वह उदात्त भी हो। वृष, वृष्टिः। इषु, इष्टिः। डुपचष्, पक्तिः। मन, मतिः। विद, वित्तिः। भू, भूतिः। वी, वीतिः रा, रातिः। यद्यपि धातुमात्र से क्तिन् विहित भी है तथापि उदात्त के लिये यह विधान है॥ १४३७॥

१४३८–ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च॥ अ०॥ ३॥ ३। ९७॥

ऊति आदि शब्द क्तिन् प्रत्ययान्त अन्तोदात्त निपातन हैं। ऊतिः। यहां अव

धातु से क्तिन् और अव को ऊठ् (ज्वर०) आदेश० । यूतिः । जूतिः । यु और जु से क्तिन् और उन को दीर्घ०।सातिः । यहां [षो] अन्तकर्मणि को क्तिन् के परे द्यति०) प्राप्त जो इकारादेश उस का अभाव निपातन से हो जाता है । वा क्तिन् के परे [षन] धातु को आकारादेश (जनसन०) हो जाता है । हेतिः । यहां क्तिन् के परे हन् को हिं आदेश वा [हि] गतौ वृद्धौ च । धातु को गुणादेश निपातन है । कीर्तिः । यहां [कृत] संशब्दने से क्तिन् प्रत्यय होता है ॥ १४३८ ॥

१४३९—व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९८ ॥

व्रज और यज धातु से स्त्रीलिंग भाव में क्यप् प्रत्यय हो सो उदात्त हो । व्रज, व्रज्या । यज, इज्या । (२८३) संप्रसारण० ॥ १४३९ ॥

१४४०—संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९९ ॥

संज्ञाविषय में सम्पूर्वक अज आदि धातुओं से स्त्रीलिंग विषयक भाव और कर्त्तृवर्जित कारक में क्यप् प्रत्यय हो । सम्‌अज, समजन्ति यस्यां सा (सम्+अज+क्यप्+सु=) इस अवस्था में (१९८) सूत्र से अज को वीभाव प्राप्त हुआ उस के निषेध के लिये अगला वार्त्तिक है ॥ १४४० ॥

१४४१—वा०—घञपोः प्रतिषेधे क्यप उपसंख्यानम् ॥

घञ् और अप् प्रत्यय के परे अज धातु को वी भाव के प्रतिषेध में क्यप् प्रत्यय का भी उपसंख्यान करना चाहिये । इस से वी भाव का प्रतिषेध हो गया समज्या सभा, निषद, निषीदन्त्यस्यां सा, निषद्या । दूकान । निपत, निपतन्त्यस्यां,निपत्या । खंदकीलीभूमि । मन, मन्यन्तेऽनयेति, मन्या । गलपार्श्वशिरा । विद, विदन्त्यनयेति विद्या । षुञ्, सवनं, सुत्या । अभिषवः । शीङ् शेतेऽस्यामिति शय्या । भृञ् मरणं, भरन्त्यनया वा भृत्या । इण्, ईयते गम्यतेऽनया सा, इत्या । शिविका । पालकी ॥ १४४१ ॥

१४४२—कृञः श च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०० ॥

कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्ग विषयक भावादिकों में श और क्यप् प्रत्यय हो । क्रिया (२३६) कृत्या ॥ १४४२ ॥

१४४३—वा०—कृञः श चेति वा वचनम् ॥

(कृञः श च) यहां विकल्प भी ग्रहण करना चाहिये । जिस से क्तिन् प्रत्यय भी हो । कृतिः ॥ १४४३ ॥

१४४४–इच्छा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

इष् धातु से भाव में श प्रत्यय और यक् (७१६) का अभाव निपातन है । (इष्+श+सु=) इच्छा (२७३) ॥ १४४४ ॥

१४४५–मत्यल्पमिदमुच्यते इच्छेति–वा०–इच्छापरिचर्या-परिसर्यामृगयाऽटाट्यानामुपसङ्ख्यानम् ॥

इच्छा इतना निपातन अत्यन्तन्यून है इस से इच्छा, परिचर्या, परिसर्या, मृगया, अटाट्या, इन शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये । परिचर्यादिकों में श प्रत्यय और उस के परे यक् (७१६) भी होता है । परिचर, परिचरणं, परिचर्य्या । सत्कार । परिसृ, परिसरणं परिसर्या । रेंगना।यहां गुण भी निपातन से है [मृग) अन्वेषणे । चुरादि अदन्त है (मृग+णिच्+यक्+श+सु=) मृगया । यहां यक् के परे (१७७)णिलोप हो जाता है [अट] गतौ (अट+यक्+श+सु–) अटाट्या । यहां (ट्य) भाग को द्वित्वादेश, तथा "हलादिःशेष" हो कर दीर्घ हो जाता है ॥१४४५ ॥

१४४६–वा०–जागर्त्तेरकारो वा ॥

जागृ धातु से अ प्रत्यय विकल्पकर के हो जागरा (३६२) जागर्या ॥१४४६॥

१४४७–अ प्रत्ययात् अ० ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीविषयक भावादिकों में अ प्रत्यय हो (कृञ्+सन+अ+सु=) चिकीर्षा । पिपासा । कण्डूया । इत्यादि ॥ १४४७ ॥

१४४८–गुरोश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमान् जो हलन्त धातु उस से स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय हो । ईहा । ऊहा । गुरु ग्रहण से यहां न हुआ । भज, भक्तिः । शक् शक्तिः । हल् ग्रहण से यहां न हुआ । चितिः । नीति । प्रीतिः ॥ १४४८ ॥

१४४९–षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

ष् जिनका इत् संज्ञक हो उन से और भिद आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अङ् प्रत्यय हो । त्रपूष्, त्रपा । क्षमूष्, क्षमा [भिदिर्] विदारणे भेदनं भिदा । भिदा विदारण इति वक्तव्यम् । विदारण अर्थ में (भिदा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । भित्तिः होता है । छिदिर्, छिदा । छिदा द्वैधीकरण इति वक्तव्यम् । दो भाग करने अर्थ

में (छिदा) यह हो। अन्यत्र छित्तिः। होता है। (आङ्+ऋ+अङ्+सु=) आरा। यहां (सन्धि०११९) सूत्र से वृद्धि०। आरा शस्त्र्यामिति वक्तव्यम्। शस्त्री (जो भाषा में आरा प्रसिद्ध है उस) अर्थ में (आरा) यह प्रयोग हो अन्यत्र। आर्त्तिः। होता है। धृञ्, ध्रियते धार्य्यते वा जलमनयेति, धारा। धारा प्रपात इति वक्तव्यम्। अत्यन्त गिरने (जो भाषा में धारा प्रसिद्ध है उस) में (धारा) यह प्रयोग हो। अन्यत्र। धृतिः। होता है। गुहू,गुहा। गुहा गिर्य्योषाध्योरिति वक्तव्यम्। गिरि अर्थात् (पर्वत) के एकादेश और ओषधि अर्थ में (गुहा) यह प्रयोग हो। अन्यत्र। क्तिन् प्रत्ययान्त। गूढि। होता है ॥१४४९॥

१४५०—चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥अ०॥३।३।१०५॥

चिन्ति आदि धातुओं से स्त्रीलिंग में अङ् प्रत्यय हो। यह युच् का अपवाद है [चिति] स्मृत्याम्। चिन्ता [पूज] पूजायाम्। पूजा [कथ] वाक्यप्रबन्धे। कथा [कुबि] आच्छादने। कुंबा [चर्च] अध्ययने। चर्चा ॥१४५०॥

१४५१—आतश्चोपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ३ ।१०६ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो आकारान्त धातु से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो। उपधा। अवस्था। श्रत् और अन्तर् इन की उपसर्गवद्वृत्ति है। श्रद्धा। अन्तर्द्धा ॥१४५१॥

१४५२—ण्यासश्रन्थो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०७ ॥

णिजन्त, आस, श्रन्थ इन से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो। (कृञ्+णिच्+युच्+सु=) कारणा। हारणा। आस, आसना। [श्रन्थ] विमोचनप्रतिहर्षयोः। क्रादिः। श्रन्थ, श्रन्थना ॥ १४५२ ॥

१४५३—वा०—युच्प्रकरणे घट्टिवन्दिविदिभ्यउपसंख्यानम्।

युच्प्रकरण में घट्टि, वन्दि, विद इन धातुओं से भी युच् का उपसंख्यान करना चाहिये [घट्ट] चलने चुरादिः। घट्टना। वन्दि, वन्दना। विद, वेदना॥१४५३॥

१४५४—वा०—इषेरनिच्छार्थस्य ॥

युच् के प्रकरण में इच्छा अर्थ से रहित जो इष् धातु उस का भी उपसंख्यान करना चाहिये। अन्विष्यत इति अन्वेषणा ॥ १४५४ ॥

१४५५—वा०—परेर्वा ॥

युच्प्रकरण में परि से परे अनिच्छार्थक इष् धातु का विकल्प करके उपसंख्यान करना चाहिये। पर्य्येषणा। परीष्टिः। अन्यां परीष्टिं चर। अन्यां पर्य्येषणां चर॥१४५५॥

१४५६—रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥ अ०॥३।३।१०८॥

रोग की आख्या गम्यमान हो तो स्त्रीलिंग में धातु से बहुल करके ण्वुल् प्रत्यय हो। [उच्छृदिर्] दीप्तिदेवनयोः। प्रच्छर्दिका [वह] प्रापणे प्रवाहिका [चर्च] अध्ययने। विचर्चिका। बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता। शिरोर्त्तिः॥१४५६॥

१४५७—वा०—धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् ॥

धात्वर्थनिर्देश अर्थात् क्रिया के निर्देश में धातु से ण्वुल् प्रत्यय कहना चाहिये [आस] उपवेशने। आसिका। का नामासिका अन्येष्वीहमानेषु। औरों के काम करते हुए क्या बैठक। यहां उपवेशन क्रिया का कथन करना है। का नाम शायिका अन्येष्वधीयानेषु। औरों के पढ़ते हुए क्या सोना। तथा यहां भी शयनक्रिया का कथन है॥१४५७॥

१४५८—वा०—इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ॥

धातु के कहनेमात्रमें इक् और श्तिप् प्रत्यय कहना चाहिये. पचिर्ब्रूहि। पचते ब्रूहि। (१४५६) इस के बहुल विषय से कहीं नहीं भी होता है जैसे।कृञः श्च। यद्यपि यह श्तिप् कर्त्ता में नहीं भी होता तथापि शित् करण से श्तिप् के परे शप् आदि विकरण होते ही हैं जैसे। भवतेरः। इत्यादि॥ १४५८॥

१४५९—वा०-वर्णात्कारः ॥

वर्ण के निर्देश में वर्ण से कार प्रत्यय कहना चाहिये। अकारः। ककारः। मकारः। बहुलविषय से कहीं नहीं भी होता जैसे। अस्य च्वौ। कहीं वर्णसमुदाय से भी होता है। एवकारः। कित्विषयक प्रयोजनों के अभाव से कार प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा नहीं होती और कृत् अधिकार में विधान से इस कार प्रत्यय की कृत् संज्ञा होती है इस से। अकारः। आदि में कृदन्त मान कर प्रातिपदिक संज्ञा आदि कार्य्य होते हैं॥ १४५९॥

१४६०—वा०रादिफः ॥

र वर्ण के निर्देश में र से इफ प्रत्यय कहना चाहिये। रेफः॥ १४६०॥

१४६१—वा०—मत्वर्थाच्छः ॥

मत्वर्थ शब्द से छ प्रत्यय कहना चाहिये। मत्वर्थीय। यहां छ प्रत्यय के परे भ संज्ञा के विना भी भाष्यकार के (मत्वर्थीयः) इस शब्द के पढ़ने से वा बहुलभाव से छ के पूर्व अकार का लोप हो जाता है॥ १४६१॥

१४६२—वा०—इणजादिभ्यः ॥

अज आदि धातुओं से इण् प्रत्यय कहना चाहिये [अज] गतिक्षेपणयोः आजिः [अत] सातत्यगमने आतिः । अद, आदिः ॥ १४६२ ॥

१४६३—वा०—इञ् वपादिभ्यः ॥

वप आदि धातुओं से इञ् प्रत्यय कहना चाहिये [डुवप] बीजसंताने । वापिः। वासिः । वादिः ॥ १४६३ ॥

१४६४—वा०—इक् कृष्यादिभ्यः ॥

कृष आदि धातुओं से इक् प्रत्यय कहना चाहिये [कृष] विलेखने । कृषिः । [कॄ] विक्षेपे किरिः [गॄ] निगरणे [गॄ] शब्दे वा गिरिः ॥ १४६४ ॥

१४६५—वा०—संपदादिभ्यः क्विप् ॥

संपद आदि धातुओं से क्विप् प्रत्यय कहना चाहिये (सम्+ पद्+क्विप्+सु=) संपत् । विपत् । आपत् । प्रतीपत् । परिसीदन्ति जना अस्यां सा परिषत् । बहुलभाव से क्तिन् (१४३१) भी होता है । संपत्तिः । विपत्तिः । इत्यादि ॥ १४६५ ॥

१४६६—संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०९ ॥

स्त्रीलिंगविषयक संज्ञा में धातु से ण्वुल् प्रत्यय हो (भञ्जो) आमर्द्दने उद्दालकपुष्पभञ्जिका [वह] प्रापणे । वारणपुष्पवाहिका ॥ १४६६ ॥

१४६७-विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च ॥

अ० ॥ ३ । ३ । ११० ॥

परिप्रश्न (पूंछना) आख्यान (कहना) अर्थात् उस का उत्तरदेना गम्यमान होतो स्त्रीलिंग में धातु से इञ् और ण्वुल् विकल्प कर के हो । दूसरे पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं । प्रथम प्रश्न तदनंतर उसका उत्तर होता है परन्तु अल्पाच्तर होने से सूत्र में आख्यान शब्द का पूर्वनिपात है । त्वं कां कारिमकार्षीः । त्वं कां कारिकामकार्षीः । कां क्रियामकार्षीः । कां कृतिमकार्षीः । तूने कौन क्रिया किई । अहं सर्वां कारिमकार्षम् सर्वां कारिकामकार्षम् । सर्वां क्रियामकार्षम् । सर्वां कृत्यामकार्षम् । सर्वां कृतिमकार्षम् । मैंने सब क्रिया करलिई । इत्यादि ॥ १४६७ ॥

१४६८—पर्य्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥ अ० ॥३।३।१११॥

पर्य्याय (पौरपाटिक्रम) अर्ह (योग्यता) ऋण (दूसरे का द्रव्य धारण करना)

उत्पत्ति (जन्म) ये अर्थ गम्यमान हों तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से एवुच् प्रत्यय विकल्प कर के हो । पर्याय, तव शायिका । तुम्हारा सोना । मम शायिका। मेरा सोना । अर्ह, त्वमर्हसि दुग्धपायिकाम् । तू योग्य है दूध पीने को । ऋण, मम शाकभक्षिकां धारय । मेरी शाकभाजी तू लिये रह । उत्पत्ति, मह्यं शाकभक्षिकामुदपादि । मेरे लिये शाकभाजी बना । इसी प्रकार । ओदनभोजिका । अग्रगामिका । अग्रग्रासिका । इक्षुभक्षिका । आदि बहुत प्रयोग बन सकते हैं । द्वितीय पक्ष में । तव चिकीर्षा । मम चिकीर्षा । तव क्रिया । मम क्रिया । इत्यादि ॥ १४६८ ॥

१४६९—आक्रोशे नञ्यनिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११२ ॥

आक्रोश (कोशना) गम्यमान हो और नञ् उपपद होतो धातु से स्त्रीलिंग में अनि प्रत्यय हो । यह क्तिन् आदि का अपवाद है । अजीवानिस्ते शठ भूयात् । आक्रोश से अन्यत्र। अजीवनमस्य रोगिणः । यहां ल्युट् हो जाता है। नञ्ग्रहण से यहां न हुआ । मृतिस्ते वृषल भूयात् । इसी सूत्र तक (भाव. अकर्त्तरि, कारके) इन की अनुवृत्ति है ॥ १४६९ ॥

१४७० — नपुंसके भावे क्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

नपुंसकलिङ्गविषयक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो [हसे] हसने । हसितम् । [षह] मर्षणे । सहितम् ॥ १४७० ॥

१४७१ — ल्युट् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११५ ॥

नपुंसकलिंग भाव में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो । कृञ्, करणम् । पठ, पठनम् । शीङ् शयनम् ॥ १४७१ ॥

१४७२—कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्त्तुः शरीरसुखम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११६ ॥

स्पर्श करने से जिस से कर्त्ता को शरीर का सुख हो ऐसा कर्म उपपद हो तो धातु से ल्युट्प्रत्यय हो यह । पूर्वसूत्र (१४७१) से सिद्ध था परन्तु उपपदसमास होने के लिये विधान है । पयःपानं सुखम् । कर्मग्रहण से यहां न हुआ । तूलिकाया उत्थानं सुखम्। यहां तूलिका शब्द अपादान है। संस्पर्शग्रहण से यहां न हुआ। अग्निकुण्डस्योपासनं सुखम् । कर्त्तृग्रहण से यहां न हुआ । गुरोः स्नापनं सुखम् । यहां गुरु शब्द कर्म है । शरीरग्रहण से यहां न० पुत्रस्य परिष्वञ्जनं सुखम्। यहां सुख मानसी प्रीति

हैं। सुख ग्रहण से यहां न हुआ। कण्टकानां मर्द्दनं दुःखम् ॥ १४७२ ॥

१४७३–वा यौ ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५७ ॥

यु अर्थात् ल्युट् प्रत्यय हो तो अज धातु को वी आदेश विकल्प करके हो (प्र+अज+ल्युट्+सु=) प्रवयणम् । प्राजनम् ॥ १४७३ ॥

१४७४–करणाधिकरणयोश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११७॥

करण और अधिकरण में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो। ओव्रश्चू, प्रवृश्चतीध्मानि येन स इध्मप्रवृश्चनः कुठारः। दुह,गां दोग्धि यस्यां सा गोदोहनी। स्थाली॥१४७४॥

१४७५-पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ॥ अ० ॥३ । ३ ।११८॥

संज्ञा अभिधेय हो तो पुंलिङ्ग विषयक करण और अधिकरण में धातु से प्राय करके घप्रत्यय हो [अमो] रोगे। अमन्ति रु जन्त्यनेन, अमः। रोगः।आकुर्वन्त्यस्मिन्निति, आकरः। आलीयन्त स्थाप्यन्ते पदार्था अस्मिन्निति, आलयः। पुंसिग्रहण से यहां नहीं होता। प्रसाधनम्। संज्ञाग्रहण से यहां नहीं होता। प्रहरणो दण्डः ॥ १४७५ ॥

१४७६–छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ९६ ॥

दो उपसर्गों से रहित जो छादि अङ्ग उस की उपधा को ह्रस्व आदेश हो। दन्ता च्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। उरश्छदः। घटः। अद्व्युपसर्गग्रहण से यहां उपधा को ह्रस्व नहीं होता। समुपच्छादः। अद्विप्रभृत्युपसर्गस्येति वक्तव्यम्। महाभाष्य।दो आदि उपसगयुक्त को निषेध करना चाहिये समुपातिच्छाद ॥ १४७६ ॥

१४७७–गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च॥अ०॥३।३।११९

संज्ञा अभिधेय हो तो पुंलिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घप्रत्ययान्त गोचर, संचर, वह, व्रज, व्यज आपण निगम ये निपातन हैं। चर गावश्वरन्त्यस्मिन्निति, गोचरो देशः संचरन्त्यस्मिन्निति, संचारो मार्गः। वह वहन्ति तेन, वहः। स्कन्धः। व्रज, व्रजो। मार्गः। गावो व्रजन्त्यस्मिन्निति, व्रजो गोष्ठः। गोंड़ा।व्यजन्ति तेन व्यजः। तालवृन्त। ताड़ की डार वा ताड़ का व्यजना। यहां निपातन से वीभाव (१५५) नहीं होता। आपणन्ते व्यवहरन्तेऽस्मिन्निति, आपणः। पण्यस्थानम्। दूकान। निगम्यन्तेनेन पदार्था इति,निगमो वेदः। यहां चकार अनुक्त के समुच्चय के लिये है। कषन्ति तेन, कषः। निकषः ॥ १४७७ ॥

१४७८–अवे तृस्त्रोर्घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२० ॥

पुंल्लिङ्गविषयक संज्ञा वाच्य हो और अव उपपद हो तो करण और अधिकरण

में धातु से घञ् प्रत्यय हो। पिछले व (१५७५) प्रत्यय का अपवाद है। अवतारः। अवस्तारः। जवनिका (ओट कनात) यहां (प्राय) शब्द की अनुवृत्ति कर के (१४७५) कहीं असंज्ञा में भी होता है। अवतारः सागरस्य। सागर का उतरना ॥ १४७८ ॥

१४७९–हलश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२१ ॥

संज्ञा वाच्य हो तो हलन्त धातु से पुंल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ् प्रत्यय हो। आरमन्त्यस्मिन्निति, आरामः। बाग। अपमृज्यन्ते रोगा अनेनेति, अपामार्गः। चिरचिरा। विदन्ति तत्वज्ञानाद्यनेनेति, वेदः ॥१४७९॥

१४८०–वा० घञ्विधौ अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् ।

घञ् के विधान में अवहार आधार आवाय इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये। अवाह्रियन्तेस्मिन्निति, अवहारः। आध्रियन्तेस्मिन्निति, आधारः। आ+वेञ्, एत्य तस्मिन् वयन्ति आवायः ॥१४८०॥

१४८१–अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ॥ अ०॥३।३।१२२॥

संज्ञा वाच्य हो तो पुंल्लिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ्प्रत्ययान्त अध्याय आदि शब्द निपातन हैं। अधीङ्, अधीयतेस्मिन्निति, अध्यायः। नि+इण् नियन्तेऽनेन व्यवहारा इति न्यायः। उद्+यु, उद्युवन्ति अस्मिन्निति उद्यावः। सम्+हृञ्, संह्रियन्तेनेन भटादय इति संहारः ॥१४८१॥

१४८२ उदङ्कोऽनुदके ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२३ ॥

उदकभिन्न संज्ञाविषय में उदंक यह निपातन है घृतमुदच्यतेऽस्मिन्निति, घृतोदंकः। घृतजिस में निकालें वह घृतोदंक कहावे। यहां उद् पूर्व अञ्चु धातु से घञ् प्रत्यय निपातन से और (९४३) इस सूत्र से कुत्व तथा परसवर्ण (२६४) हो जाता है। अनुदकग्रहण से यहां न हुआ। उदकोदञ्चनः जल धरने का पात्र ॥१४८२ ॥

१४८३–जालमानायः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२४ ॥

जाल वाच्य हो तो आनाय यह निपातन है। आनीयन्ते मत्स्यादयोनेनेति, आनायः। धीवर आदि जनों का जाल। जाल से अन्यत्र। आनयनः ॥१४८३॥

१४८४ खनो घ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२५ ॥

खन् धातुसे करण और अधिकरण में घ और घञ् प्रत्यय हो। आ+खनु, आखनः। आखानः। इस खन से जो घ प्रत्ययविधान किया है इस में घ पढ़ना अनर्थक है क्योंकि

घित् कार्य खन् को नहीं प्राप्त हैं इस से घित्करण सामर्थ्य से घ प्रत्यय और धातुओं से भी होता है जैसे भज, भगः । पद, पदम् । इत्यादि ॥ १४८४ ॥

१४८५–वा०–खनो डडरेकेकवकाः ॥

खन् धातु से ड, डर, इक, इकवक ये प्रत्यय कहने चाहिये । ड, आखः । डर, आखरः । इक, आखानिकः । इकवक, आखानिकवकः ॥ १४८५ ॥

१४८६ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥

कृच्छ्र (दुःख) और अकृच्छ्र (सुख) अर्थ में वर्त्तमान जो ईषत् , दुर् , सु सो उपपद हों तो धातु से खल् प्रत्यय हो । यह प्रत्यय (८१४) सूत्र के अनुसार भाव और कर्म में होता है (ईषत्, दुर् , सु) इन में दुर् के साथ कृच्छ्र और ईषत् तथा सु के साथ अकृच्छ्र अर्थ की योग्यता है । ईषत्करः । दुष्करः । सुकरः कटो भवता । ईषद्गमः । दुर्गमः । सुगमः । इत्यादि । ईषद् आदि के ग्रहण से यहां न हुआ । कृच्छ्रेण कटः कार्य्यः । कृच्छ्राकृच्छ्रार्थग्रहण से यहां न हुआ । ईषत्कार्य्यः ॥ १४८६ ॥

१४८७ वा०–निमिमीलियां खलचोः प्रतिषेधः ॥

खल् और अच् प्रत्यय के परे निमि, मी, ली इन धातुओं के एच् को आकारादेश न हो । यहां अच् यह (१३८५, ८७५) सूत्र विहित अचों का ग्रहण है । खल् । नि+डु मिञ्, ईषन्निमयः । दुर्निमयः । सुनिमयः । अच् निमयो वर्त्तते । निमयः पुरुषः । इसी प्रकार ईषत्प्रमयः । सुप्रमयः । ली , ईषाद्विलयः । इत्यादि समझना चाहिये ॥ १४८७ ॥

१४८८–उपसर्गात् खल्घञोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६७ ॥

खल् और घञ् प्रत्यय परे होंतो उपसर्ग से ही परे लभ धातु को नुम् आगम हो । खल् ईषत्प्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । घञ् उपालम्भः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ , ईषल्लम्भः । लाभः ॥ १४८८ ॥

१४८९–न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६८ ॥

खल् , घञ् परे हों तो केवल सु, और दुर् से परे लभ धातु को नुम् न हो । सुलभः । दुर्लभः । केवलग्रहण से यहां होता है सुप्रलम्भः । अतिदुर्लम्भः (अतिसुलभम् , अतिदुर्लभम्) ये तो सु अति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा में होंगे । जैसे सुलभमतिक्रान्तम् । अतिसुलभम् । इत्यादि ॥ १४८९ ॥

१४९०–कर्त्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२७ ॥

कर्त्ता और कर्म ये यथाक्रम से उपपद हों तथा ईषत् आदि भी उपपद हों तो भू और कृञ् धातु से खल् प्रत्यय हो । खल् कर्त्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोः । महा० यह खल् प्रत्यय च्व्यर्थ अर्थात् अभूततद्भाव अर्थ में कर्त्ता और कर्म होंतो कहना चाहिये । यहां ईषदादिकों से परे कर्त्ता कर्म और उन से परे धातु का प्रयोग होता है । जैसे अनाढ्येन भवता ईषदाढ्येन शक्यं भवितुम्, ईषदाढ्यम्भवं भवता (१०३५) से मुम् । अनाढ्येन भवता दुःखेनाढ्येन भवितुं शक्यं दुराढ्यम्भवं भवता । अनाढ्येन भवता सुखेनाढ्येन भवितुं शक्यम्, स्वाढ्यम्भवं भवता । अनाढ्यमीषदाढ्यं कर्त्तुं शक्यम्, ईषदाढ्यं करः । अनाढ्यं दुःखेनाढ्यं कर्त्तुंशक्यः, दुराढ्यंकरः । अनाढ्यं सुखेनाढ्यं कर्त्तुं शक्यः, स्वाढ्यंकरः । च्व्यर्थ कहने से आढ्येन सुभूयते*इत्यादि में नहीं होता ॥ १४९० ॥

१४९१–आतो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२८ ॥

कृच्छ्र, अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय हो । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ॥ १४९१ ॥

१४९२–छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२९ ॥

वेदविषय में कृच्छ्र, अकृच्छ्रार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो गति अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो । (सु+उप+षद्=) सूपसदनोऽग्निः । सूपसदनमन्तरिक्षम् । इत्यादि ॥ १४९२ ॥

१४९३–अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥अ० ॥ ३ । ३ । १३० ॥

वेदविषय में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ ईषदादि उपपद हों तो गत्यर्थकों से अन्य जो धातु हैं उन से भी युच् प्रत्यय देखा गया है । सुदोहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् । सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् ॥ १४९३ ॥

१४९४–भाषायां शासियुधिदृशिधृषिभ्यो युच् ॥

भाषा (लोक) में कृच्छ्राकृच्छ्रार्थ ईषदादि उपपद हों तो शासि, युधि, दृशि, धृषि इन धातुओं से युच् प्रत्यय कहना चाहिये । दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्धर्षणः । इत्यादि ॥ १४९४ ॥

* (स्वाढ्येन भूयते) यह जयादित्य ने प्रत्युदाहरण दिया है सो उन का मत्त प्रलाप है क्यों कि जहां खल् प्रत्यय नहीं होता वहां धातु से अलग उपसर्ग का प्रयोग नहीं होता किन्तु (ते प्राग्धातोः) सूत्र के अनुसार पूर्व ही प्रयोग होता है ।

१४९५-॥वा०-मृषश्चेति वक्तव्यम् ॥

उक्तविषय में मृष धातु से भी युच् प्रत्यय कहना चाहिये। दुर्मर्षणः ॥१४९५॥

१४९६-आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥अ०॥३।३।१७०॥

आवश्यक और आधमर्ण्य (ऋण लेना) अर्थ युक्त कर्त्ता वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। अवश्यंकारी। शतंदायी। यहां (सामा०-मयूर०) से समास होता है ॥ १४९६ ॥

१४९७-कृत्याश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७१ ॥

आवश्यक और आधमर्ण्य अर्थ में धातु से कृत्य संज्ञक प्रत्यय हों। भवतावश्यं गुरुः सेव्यः। भवतावश्यं सहस्रं देयम् ॥ १४९७ ॥

१४९८-क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥अ०॥ ३ । ३ ।१७४॥

संज्ञा गम्यमान हो तो आशीर्वाद अर्थ में धातु से क्तिच् और क्त प्रत्यय हों भूतिर्भवतात्। भूतिनामवाला हो। यहां (तीतुत्रत०) इस सूत्र से इट् न हुआ क्त प्रत्यय संज्ञा में। जैसे ब्रह्म एनं देयात्, ब्रह्मदत्तः। ईश्वरदत्तः ॥ १४९८ ॥

१४९९-न क्तिचि दीर्घश्च ॥अ०॥ ६ । ४ । ३९ ॥

क्तिच् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश (अनिट्) तथा वनति और तनोति आदि अंगों के अनुनासिक लोप तथा उनकी उपधा को दीर्घ न हो। अनुदात्तोपदेश, यच्छतीति यन्तिः। जो कार्य्यों से निवृत्ति को प्राप्त होता है वह यन्ति कहता है। यन्तिर्यच्छतात्। यन्ति नामवाला निवृत्त हो। वनु, वनुते, वन्तिः। वन्तिर्वनुतात्। तनु, तन्ति स्तनुतात् इत्यादि ॥१४९९॥

१५००-सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम्॥अ०॥६।४।४५।

क्तिच् प्रत्यय के परे सन् धातु को आकारादेश और उस का लोप विकल्प करके हो। सन, सातिः। सतिः। सन्तिः। सनुतात् ॥ १५०० ॥

१५०१-तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः अ० ॥ ३ । ४ । ९ ॥

वेदविषय में तुमुन्प्रत्यय के अर्थ में धातु से से, सेन्, असे, असेन् क्से, कसेन् अध्यै,

अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् ये प्रत्यय हों। तुमर्थ से भाव*लिया जाता है। से। वच्।वक्षे। वक्तुं प्राप्त था। यहां वच् धातु से सेप्रत्यय (सन्धि०२०२) कुत्व और ष (५६) आदेश होजाता है। वक्षे रायः। सेन्। एषे। इण् धातु को सेन् प्रत्यय के परे गुण (२१) और षत्व हो जाता है। तावामेषे रथानाम्। असे, असेन्,। जीव, क्रत्वे दक्षाय जीवसे। शारदो जीवसे धाः। कसे, प्र+इण, प्रेषे भगाय। कसेन्, श्रिञ्, गवामिव श्रियसे। अध्यै, अध्यैन्। उप+आङ्+चर, कर्मण्युपाचरध्यै। कध्यै, आङ्+हु, इन्द्राग्नी आहुवध्यै। कध्यैन्। श्रिञ् श्रियध्यै। शध्यै, मदी+णिच्, राधसः सह मादयध्यै। यहां शध्यै के परे शप् होकर णिच् को गुण हो जाता है। शध्यैन्, पा, वायवे पिबध्यै। तवै [पा] पाने सोममिन्द्राय पातवै। तवेङ् षूङ्, दशमे मासि सूतवे। तवेन् गम्लृ, स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १५०१ ॥

१५०२--प्रयैरोहिष्यैअव्यथिष्यै ॥ अ० ॥ ३। ४। १० ॥

वेदविषय में प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये शब्द तुमर्थ में निपातन किये हैं। प्रयै। यहां प्रपूर्वक या धातु से कै प्रत्यय और आलोप (२४४) होजाता है। प्रयै देवेभ्यः। प्रयातुम् प्राप्त था। रोहिष्यै। यहां रुह धातु से इष्यै प्रत्यय होता है अपामोषधीनां रोहिष्यै। रोहितुं प्राप्त था। अव्यथिष्यै। यहां नञ्पूर्वक व्यथ धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। अव्यथितुं प्राप्त था ॥ १५०२ ॥

१५०३--दृशे विख्ये च ॥

वेदविषय में तुमर्थ में दृशे विख्ये ये निपातन हैं। दृश धातु से के प्रत्यय हो जाता है ॥ दृशे विश्वाय सूर्यम्। वि+ख्या, से के प्रत्यय हुआ। विख्ये त्वा हरामि ॥ १५०३ ॥

१५०४--शकि णमुल्कमुलौ ॥ अ० ॥ ३। ४। १२ ॥

वेदविषय में शक्लृ धातु उपपद हो तो तुमर्थ में धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय हों। णमुल्, वि+भज, अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्। विभक्तुं प्राप्त था। णित् से वृद्धि हो जाती है। कमुल्, अप+लुप्लृ, अपलुपं नाशक्नुवन्। अपलोप्तुं प्राप्त था ॥ १५०४ ॥

---

* तुमुन् प्रत्यय किसी विशेष अर्थ में नहीं कहा और "अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति" जिन प्रत्ययों का विशेष अर्थ नहीं कहा है वे स्वार्थ में होते हैं स्वार्थ धातुओं का भावमात्र है इस से तुमर्थ करके भाव का ग्रहण है ॥

१५०५--ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १३ ॥

वेदविषय में ईश्वर शब्द उपपद हो तो धातु से तोसुन् और कसुन् प्रत्यय हो। ईश्वरो विचारितोः । विचरितुं प्राप्त था । ईश्वरोऽभिचारितोः । अभिचरितुम् । प्राप्त था । ईश्वरो विलिखः । विलिखितुम प्राप्त था ॥ १५०५ ॥

१५०६--कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १४ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ (भाव, कर्म्म) में धातु से तवै, केन्, केन्य, त्वन् ये प्रत्यय हों । तवै । म्लेच्छ, म्लेच्छितवै । म्लेच्छितव्यम् । अनु+इण्, अन्वेतवै । अन्वेतव्यम् । केन् । अव+गाहू, नावगाहे । नावगाहितव्यम् । केन्य । श्रु+सन्, शुश्रुषेण्यः शुश्रूषितव्यम् । त्वन् । डुकृञ्, कर्त्वं हविः । कर्त्तव्यम् प्राप्त था ॥ १५०६ ॥

१५०७--अवचक्षे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १५ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ में अवपूर्वक चक्षिङ् धातु से एश् प्रत्यय निपातन है। रिपुणा नावचक्षे । अवख्यातव्यम् । प्राप्त था ॥ १५०७ ॥

१५०८--भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १६ ॥

वेदविषय में भावलक्षण (क्रिया जिस से लक्षित हो उस अर्थ) में वर्तमान स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि इन धातुओं से तुमर्थ में तोसुन् प्रत्यय हो । सम्+स्था, संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति । समाप्तिपर्य्यन्त वेदीमें ठहरते हैं यहां संस्थिति अर्थात् समाप्ति से ठहरना क्रिया लिखीगई इस लिये सम्पूर्वक स्था धातु से तोसुन् प्रत्यय हुआ । इसी प्रकार अगले प्रयोग भी समझना चाहिये । उद्+इण्, पुरासूर्यमुदेतोराधेयः । अप+आङ्+कृञ्, पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः । प्र + वद, पुरा प्रवदितोरग्नौ प्रहोतव्यम् । प्र+चरि, पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम् । हु, आहोतोरप्रमत्तस्तिष्ठति । तमु, आतमितोरासीत । जनी, काममाविजनितोः संभवाम ॥ १५०८ ॥

१५०९--सृपितृदोः कसुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १७ ॥

वेद विषय में भावलक्षण में वर्त्तमान सृपि और तृद धातु से तुमर्थ में कसुन् प्रत्यय हो । सृप, पुराक्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । तृद, पुरा जर्त्तृभ्य आतृदः १५०९ ॥

१५१०अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेध अर्थ वाले अलं और खलु उपपद हों तो प्राचीनों के मत में धातु से क्त्वा प्रत्यय हो कृत्प्रत्ययान्त अव्यय भाव में होते हैं इस से क्त्वा को भाव में जानना चाहिये। डुदाञ्, अलं दत्वा। मतदेओ। पठ, खलु पठित्वा। मतपढ़ो। अलं खलुग्रहण से यहां न हुआ। माकार्षीत्। वह मत करे। प्रतिषेधग्रहण से यहां न हुआ। अलंकारः। आभूषण। यहां प्राचां ग्रहण सत्कार के लिये है। क्योंकि वासरूपविधि से यथाप्राप्त अन्य प्रत्यय हो ही जायगा। जैसे अलं रोदनेन॥ १५१०॥

१५११--उदीचां माङो व्यतीहारे॥ अ०॥ ३। ४। १९॥

उदीचों के मत में व्यतीहार (उलट पलट होना) अर्थ में वर्त्तमान मेङ् धातु से क्त्वा प्रत्यय हो(अप+मेङ्+क्त्वा+सु=)यहां(कुगति०)सूत्र से समास होकर॥१५११॥

१५१२-समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्॥ अ०॥ ७। १। ३७॥

नञ् पूर्वक समास न हो तो क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश हो। इस से(क्त्वा) को ल्यप् आदेश हो कर (अप+मेङ्+ल्यप्+सु=) इस अवस्था में॥ १५१२॥

१५१३-मयतेरिदन्यतरस्याम्॥ अ०॥ ६। ४। ७०॥

ल्यप् परे हो तो आकारान्त मेङ् धातु को इकारादेश विकल्प करके हो (सन्धि० ५८) इस सूत्र के अनुसार मेङ् के अन्त्य को इकार हो कर (सन्धि०२७३) तुक् हो जाता है। जैसे। अपमित्य याचते। वस्त्र आदि को उलटते पलटते मांगता है। जहां इकार न हुआ वहां आत्त्व (२४२) हो जाता है। जैसे अपमाय याचते। यहां पूर्वकाल की प्रतीति नहीं है इस से यह क्त्वा विधान किया क्योंकि पूर्वकाल में क्त्वा (१५१६) विधान करेंगे। उदीचों के ग्रहण से औरों के मत में पूर्वकालिक क्त्वा भी मेङ् धातु से होता है जैसे। याचित्वा अपमयते॥ १५१३॥

१५१४-क्त्वापि छन्दसि अ०॥ ७। १। ३८॥

वेदविषय में अनञ्पूर्वसमास में क्त्वा को क्त्वा और ल्यप् आदेश हों। क्त्वा कृत्वा, कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा। प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्थयित्वा। ल्यप्,उद्धृत्य जुहोति। वा ग्रहण से भी दोनों आदेश हो जाते तथापि यहां क्त्वा ग्रहण सर्वोपाधि की निवृत्ति के लिये है। इस से असमास में भी ल्यप् होता है। अर्च्य तान् देवान् गतः॥१५१४॥

१५१५-परावरयोगे च॥ अ०॥ ३। ४। २०॥

पर से पूर्व का और अवर अर्थात् पूर्व से पर का योग गम्यमान हो तो धातु से क्त्वा प्रत्यय हो। परयोग, अप्राप्य ग्रामं पर्वतः स्थितः। ग्राम को न पाकर पर्वतः रहा

अर्थात् ग्राम से परे पर्वत है। यहां प्रपूर्वक आप्लृ धातु से क्त्वा प्रत्यय फिर प्रादिसमास (सामा० कुगति०) होने से ल्यप् आदेश हो कर नञ्समास होता है। अवरयोग, अतिक्रम्य पर्वतं ग्रामः स्थितः। पर्वत को अतिक्रमण करके ग्राम रहा। अर्थात् पर्वत ग्राम से पहिले है॥ १५१५॥

१५१६--समानकर्तृकयोः पूर्वकाले॥ अ०॥ ३।४।२१॥

जिन का समान कर्त्ता है ऐसे जो धातु उन में जो पूर्व काल विषयक अर्थ में वर्त्तमान धातु उस से क्त्वा प्रत्यय हो। भुक्त्वा व्रजति। भोजन करके जाता है। यहां भोजन क्रिया प्रथम करना है इस से भुज धातु से क्त्वा प्रत्यय हो गया। इसी प्रकार। स्नात्वा पठति इत्यादि समझना चाहिये (समानकर्त्तृकयोः) यह द्विवचन अतन्त्र है इस से। स्नात्वा। पीत्वा भुक्त्वा पाठित्वा गच्छति। इत्यादिकों में भी क्त्वा प्रत्यय होता है। समानकर्त्तृकग्रहण से यहां न हुआ। वर्षति मेघे देवदत्तो गतः। पूर्वकालग्रहण से यहां न हुआ। गच्छन् पठति। जाता हुआ पढ़ता है। यहां पूर्वकालता नहीं तथा। मुखंव्यादाय स्वपिति। यहां भी पूर्वकालता नहीं क्योंकि सोने वाले का मुख सोनेके पीछे फैलता है तथापि मुख-फैले पीछे जो निद्रा है उस से मुख का फैलना पूर्वकाल में है इस से पूर्वकालता सिद्ध है क्योंकि सोनेवाला मुख फैले पीछे दो घड़ी अवश्य सोवेगा॥ १५१६॥

१५१७--क्त्वि स्कन्दस्यन्दोः अ०॥६।४॥ ३१॥

क्त्वा प्रत्यय परे होतो स्कन्द और स्यन्दू धातु के उपधानकार का लोप न हो [स्कन्दिर्] गतिशोषणयोः। स्कन्त्वा [स्यन्दू] प्रश्रवणे यह ऊदित है इस से परे क्त्वा को विकल्पकरके इट् होगा जिस पक्ष में इट् नहीं होता उस पक्ष में (१३९) प्राप्त जो नलोप उस का निषेध हो गया। स्यन्त्वा। और जहां इट् होता है वहां॥ १५१७॥

१५१८--न क्त्वा सेट्॥अ०॥ १। २। १८॥

सेट् (इट्सहित) क्त्वा प्रत्यय कित् संज्ञक न हो। इस से कित् संज्ञा का निषेध हो कर नलोप भी नहीं होता। जैसे स्यन्दित्वा। शयित्वा। सेट् ग्रहण इस लिये है कि। कृत्वा। हृत्वा इत्यादि में कित् निषेध नहीं॥ १५१८॥

१५१९--मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा॥अ०॥ १। २। ७॥

मृड, मृद, गुध, कुष, क्लिश, वद, और वस धातु से परे सेट् क्त्वा कित् संज्ञक हो। पिछले सूत्र से कित् संज्ञा का निषेध था इस लिये विधान किया। मृडित्वा

[क्लिशू] विबाधने क्लिशित्वा (स्वरि०) क्लिष्टा । वद, उदित्वा (२८१) वस, उषित्वा ॥ १५१९ ॥

१५२०--नोपधात्थफान्ताद्वा ॥ अ० ॥ १ । २ । २३ ॥

नकार जिस के उपधा में तथा थ और फ अन्त में हों उस धातु से परे सेट् क्त्वा कित् संज्ञक विकल्प कर के हो। थान्त, श्रथित्वा। श्रन्थित्वा फान्त, गुफित्वा । गुम्फित्वा । नोपधग्रहण में । कोथित्वा । यहां कित् संज्ञा का विकल्प नहीं होता किन्तु (१५१८) इस से नित्य कित् संज्ञा का निषेध हो कर गुण हो जाता है ॥ १५२० ॥

१५२१वञ्चिलुञ्च्यृतश्च ॥ अ०॥ १ । २ ।२४ ॥

वञ्चि, लुञ्चि ऋत् इन धातुओं से परे सेट्क्त्वा विकल्प करके कित् संज्ञक हो। [वञ्चु] गतौ वञ्चित्वा वचित्वा [लुञ्च] अपनयने लुचित्वा । लुञ्चित्वा । ऋत, यह सौत्रधातु है । ऋतित्वा । अर्तित्वा ॥ १५२१ ॥

१५२२–तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य ॥ अ०॥ १। २ ।२५ ॥

काश्यप आचार्य के मत में तृषि, मृषि और कृशि धातु से परे सेट् क्त्वा विकल्प कर के कित् संज्ञक हो । ञितृष, तृषित्वा । तर्षित्वा । मृषु, मृषित्वा । मर्षित्वा कृश कृशित्वा । कर्शित्वा । द्युतित्वा । द्योतित्वा । लिखित्वा । लेखित्वा (५१३) उषित्वा । वसित्वा (११७४) अञ्चित्वा (११७३) लुभित्वा । लोभित्वा(११७५)॥१५२२

१५२३--जॄव्रश्चोः क्त्वा ॥अ० ॥ ७ । २ । ५५ ॥

जॄ और व्रश्चू धातु से परे क्त्वा को इट् आगम हो । जॄष् जरीत्वा (२६४) जरीत्वा ओव्रश्चू, व्रश्चित्वा ॥ १५२३ ॥

१५२४--उदितो वा ॥ अ० ॥ ७ ।२ । ५६ ॥

जिस का उकार इत् संज्ञक हो उस धातु से परे क्त्वा को इट् विकल्प करके हो- शमु, शमित्वा शान्त्वा (५८७) ॥ १५२४ ॥

१५२५--क्रमश्च क्त्वि ॥ अ० ॥ ६ । ४।१८ ॥

झलादि क्त्वा प्रत्यय परे होतो क्रम् धातु के उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो क्रमु, क्रन्त्वा । क्रान्त्वा (सन्धि २५९, २६४) झलादि ग्रहण से यहां उपधालोप न हुआ । क्रमित्वा (१५२४) ॥ १५२५ ॥

१५२६--जान्तनशां विभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३२ ॥

जकार जिन के अन्त में हो उन अङ्गों और नश अंग की उपधा का लोप विकल्प करके हो [भञ्जो] आमर्दने । भक्त्वा । भङ्क्त्वा । रञ्ज, रक्त्वा । रङ्क्त्वा नश नष्ट्वा । यहां (४०९) नुम् होता है उस का एकपक्ष में लोप हो गया । और दूसरे पक्ष में न हुआ । जैसे । नष्ट्वा (४०७) सूत्र से पक्ष में । नशित्वा । खात्वा (३९४) दो, दित्वा । षो, सित्वा । मा, मित्वा । स्था, स्थित्वा । इन सभों में (१२०७) सूत्र से इकार० । डुधाञ् हित्वा (१२०९) ॥ १५२६ ॥

१५२७--जहातेश्च ॥ अ० ॥७ । ४ । ४३ ॥

वेदविषय में जहाति (ओहाक्) अंग को विकल्प करके हि आदेश हो [ओहाक्] त्यागे । हित्वा । और [ओहाङ्] गतौ । इस का । हात्वा होगा । अद, जग्ध्वा । (१२१६) सूत्र से जग्धि आदेश हो जाता है ॥ १५२७ ॥

१५२८--वा ल्यपि ॥अ०॥६ । ४ । ३८ ॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश वनति और तनोत्यादि अंगों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके हो । यह व्यवस्थित विभाषा है इस से मकारान्त अङ्गों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके तथा औरों के का नित्य होता है । जैसे । मान्त अङ्ग गम्, आगत्य । आगम्य नम्, प्रणत्य । प्रणम्य । मान्तों से अन्यत्र । हन् प्रहत्य । मन, प्रमत्य । वन्, प्रवत्य (परिभा० ४६) परिभाषा के अनुसार ल्यप् के विषय में (हि, दथ्, आ, इत, दीर्घ, इट्) ये विधि क्त्वा प्रत्यय के आश्रय से होने वाले अन्तरङ्ग भी हैं पर नहीं होते किन्तु क्त्वा को बहिरङ्ग ल्यप् आदेश हो जाता है । जैसे हि, विधाय (१२०९) दथ् प्रदाय (१२११) आ, प्रखन्य(३९४) इत्, प्रस्थाय । दीर्घ प्रक्रम्य (५८७) प्रदीव्य (४६) ॥ १५२८ ॥

१५२९--न ल्यपि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६९ ॥

ल्यप् परे हो तो घुसंज्ञक, मा, स्था, गा, पा, जहाति (ओहाक्) और सा-इन अंगों को ईकारादेश न हो । धेट्, प्रधाय । माङ्, प्रमाय । स्था, प्रस्थाय । गै, प्रगाय [पा] पाने प्रपाय । प्रहाय । षो, प्रसाय [मीङ्] हिंसायाम् प्रमाय [डुमिञ्] प्रक्षेपणे । निमाय [दीङ्] क्षये । अवदाय । इन में आत्व० (३९९) [लीङ्]

श्लेषणे विलाय (४००) आत्व हो जाता । दूसरे पक्ष में । विलीय । विचर+णिच्, विचार्य यहां णिलोप (१७७) ॥ १५२९ ॥

१५३०–ल्यपि लघुपूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५६

ल्यप् परे हो तो पूर्व जो लघु हो उस के परे णि के स्थान में अय् आदेश हो। वि+गण+णिच्, विगणय्य। प्रणमय्य। यहां णकार का अकार पूर्व है उस से उत्तर णि को अय् आदेश हो जाता है किन्तु लोप नहीं (१७७) नहीं होता लघुपूर्व ग्रहण से यहां न हुआ। संप्रधृञ्+णिच्, संप्रधार्य्य गतः ॥ १५३० ॥

१५३१– विभाषापः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५७ ॥

आप्लृ धातु से परे णि को अय् आदेश विकल्प करके हो । प्र+आप्लृ+णिच् प्रापय्य प्राप्य वा पठति । यहां णिलोप (१७७) हो जाता है ॥ १५३१ ॥

१५३२– जनिता मंत्रे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५३ ॥

मंत्रविषय में णिलोप से जनिता यह निपातन है । यो नः पिता जनिता । यहां जन धातु से इडादि तृच् प्रत्यय के परे णि लोप निपातन से होता है । मंत्र से अन्यत्र । जनयिता होगा ॥ १५३२ ॥

१५३३–शमिता यज्ञे ॥ अ० ६ । ४ । ५४

यज्ञ कर्म में णिलोप से शमिता यह निपातन है । शृतं हविः शमितः। यह संबुद्धि विषय में प्रयोग है यहां शमु धातु से तृच् प्रत्यय के परे णिच् का लोप हो जाता है यज्ञ से अन्यत्र । शमयितः । यह प्रयोग होगा ॥ १५३३ ॥

१५३४–यु प्लुवोर्दीर्घश्छन्दसि ॥ अ० ॥६ । ४ । ५८॥

ल्यप् परे हो तो वेदविषय में यु और प्लु धातु को दीर्घादेश हो। यु, दान्त्यनुपूर्वं वियूय। यहां विपूर्वक यु धातु को ल्यप् के परे दीर्घ० । स्रुङ् यत्रायो दक्षिणा परिप्लूय यहां परिपूर्वक प्लु को दीर्घ० । वेद से अन्यत्र । संयुत्य । संप्लुत्य ॥ १५३४ ॥

१५३५-- क्षियः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५९ ॥

ल्यप् परे होतो क्षि धातु को दीर्घादेश हो । प्रक्षीय । संक्षीय ॥ १५३५ ॥

१५३६--ल्यपि च ॥ अ०॥ ६ । १ । ४१ ॥

ल्यप् परे होतो वेञ् धातु को संप्रसारण न हो। प्र+वेञ्,प्रवाय तिष्ठति॥ १५३६॥

१५३७--ज्यश्च ॥अ० ॥६ ।१।४२ ॥

ल्यप् परे हो तो ज्या धातु को भी संप्रसारण न हो [ज्या] वयो हानौ प्रज्याथोपरमते । बुड्ढा हो कर सब कामों से निवृत्त होता है ॥ १५३७ ॥

१५३८--व्यश्च ॥अ० ॥६ । १ । ४३ ॥

ल्यप् के परे व्या धातु क भी संप्रसारण न हो [व्येञ्] संवरणेउपव्याय ॥१५३८॥

१५३९--विभाषा परेः ॥अ० ॥६ । १ । ४४ ॥

ल्यप् परे हो तो परिउपसर्गसेपरे व्येञ् धातु को विकल्प करके संप्रसारणहो।परिवीय यहां संप्रसारण किये पीछे लुक् (संधि० २७३) सूत्र से प्राप्त उस को बाध कर (हलः) सूत्र से दीर्घादेश हो जाता है ॥ १५३९ ॥

१५४०—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥अ०॥ ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्यय (बार २ होना) अर्थ गम्यमान हो तो समानकर्तृक धातुओं में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उस से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय भी हो ॥ १५४० ॥

१५४१- वा०- आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

आभीक्ष्यय * अर्थ में वर्त्तमान जो शब्द है उस को द्विर्वचन हो । जैसे भुज भोजं भोजं व्रजति । भुज, भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । स्मृ, स्मारं स्मारं पठति। स्मृत्वा२ पठति यहां पूर्व सूत्र से णमुल् प्रत्यय होकर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययान्त को द्विर्वचन हो जाता है ॥ १५४१ ॥

१५४२—न यद्यनाकाङ्क्षे अ० ॥ ३ । ४ । २३ ॥

यद् शब्द उपपद हो और अनाकाङ्क्ष वाक्य हो तो धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय न हो । जिस वाक्य में अगली पिछली दो क्रिया रहैं और वह कुछ पर की

---

*(नित्यवीप्सयोः) इस सूत्र से जो द्विर्वचन होता है वह नित्य अर्थात् क्रिया के अविच्छिन्न होने में होता किन्तु बार २ होने में नहीं होता है जैसे किसीने कहा । स जीवति जीवति । यहां यह अर्थ प्रतीत होगा कि वह जीवता ही है । किन्तु जी के मरता फिर मर के जीवता यह नहीं प्रतीत होगा । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति भोजं भोजं व्रजति । यहां भोजन करता फिर जाता है फिर भोजन करता फिर जाता है यह भोजन क्रिया का बार २ होना प्रतीत होता है । इस लिये क्रिया के बार २ होने में(नित्य वीप्सयोः)से द्विर्वचन नहीं प्राप्त था इस से आभीक्ष्यय अर्थ में द्विर्वचन का विधान किया

आकाङ्क्षा न करे उस का यहां ग्रहण है । जैसे । यदयं पठति ततः पचति । जब यह पढ़ लेता है तदनन्तर पाक करता है । यहां यदयं पठति इस अंश में जो पठन क्रिया है उस को कुछ पचन की आकाङ्क्षा नहीं है । अनाकाङ्क्षग्रहण से यहां निषेध नहीं होता । यदयं पठित्वा गच्छति ततःपरमेव प्रसीदति । जब यह पढ़ के जाता है तदनन्तर ही प्रसन्न होता है । यदयं बालः श्रावं श्रावं विस्मरति ततः परमेव पापृच्छ्यते । इत्यादि ॥ १५४२ ॥

१५४३–विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ अ० ॥ ४ । ४ । २४ ॥

अग्रे प्रथम पूर्व ये उपपद हों तो समानकर्तृकों में जो पूर्व काल में वर्त्तमान धातु है उससे क्त्वा और णमुल् प्रत्यय विकल्प करके हो । यह अप्राप्त विभाषा है अग्रे पठित्वा गच्छति । अग्रे पाठं गच्छति। प्रथमं पठित्वा गच्छति। प्रथमंपाठं गच्छति । पूर्वं पठित्वा गच्छति पूर्वं पाठं गच्छति । विभाषा ग्रहण इसलिये है कि जब क्त्वा, णमुल् नहीं होते तब लट् आदि प्रत्यय होते हैं जैसे । अग्रे पठति ततो व्रजति । आभीक्ष्ण्य अर्थ में तो पूर्व विप्रतिषेध से नित्य क्त्वा और णमुल् होते हैं जैसे । अग्रे पठित्वा पठित्वा गच्छति । अग्रे पाठं पाठं गच्छति । इत्यादि ॥ १५४३ ॥

१५४४–कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २४ ॥

आक्रोश गम्यमान हो और कर्म्म उपपद हो तो समानकर्त्तृकों में जो पूर्व काल में वर्त्तमान धातु उस से खमुञ् प्रत्यय हो । चोरंकारमाक्रोशति । चोर कहि कर कोशता है । यहां कृञ् धातु उच्चारण अर्थ में है ॥ १५४४ ॥

१५४५–स्वादुमि णमुल् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २६ ॥

स्वादु शब्द के अर्थ वाले शब्द उपपद हों तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे णमुल् प्रत्यय हो । स्वादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नं कारं भुङ्क्ते । लवणंकारं भुङ्क्ते । यहां संपन्नं और लवणं शब्द स्वादु शब्द के पर्य्याय वाचक हैं । स्वादुमि मान्तनिपातनं क्रियते ईकाराभावार्थम् । च्व्यन्तस्य च मकारार्थम् । महाभाष्य० । ३ । ४ । २६ । स्वादु शब्द से ईकार का अभाव और च्व्यन्त स्वादु शब्द को मकारान्त रहने के लिये (स्वादुमि) यहां स्वादु शब्द को मकारान्त निपातन किया है (ईकार) स्त्रीलिंग की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय से प्राप्त है । जैसे । स्वाद्वीं कृत्वा यवागूं भुङ्क्ते । यहां (स्त्रैण० ७६) इस सूत्र से उकारान्त गुणवाची स्वादु शब्द से

ङीष् प्राप्त था सो न हुआ (च्व्यन्त) अस्वादुस्वादु कृत्वा भुङ्क्ते। स्वादुंकारं भुङ्क्ते। अब णमुल् का अधिकार है सो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उस से प्रायः होता है ॥ १५४५ ॥

१५४६–अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥ अ० ॥ ३।४।२७॥

जो सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो और अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं ये उपपद हों तो कृञ् धातु से णमुल प्रत्यय हो। जो कृञ् धातु के प्रयोग के विना भी अभीष्ट अर्थ वाक्य से कहा जाय तो कृञ् के प्रयोग को भी अप्रयोग के तुल्य समझना चाहिये जैसे। अन्यथाकारं पठति शिक्षाविरहो बालः। शिक्षा से रहित बालक अन्यथा अर्थात् उच्चारणादि नियम से रहित पढ़ता है यह अर्थ तो अन्यथा पठति शिक्षाविरहो बालः। इस वाक्य से भी होता है। इस लिये पूर्व वाक्य में सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग समझना चाहिये। सिद्धाप्रयोगग्रहण से यहां णमुल नहीं होता। शिरोन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते। शिर को और ढंग से करके भोजन करता है। यह अर्थ शिरोन्यथा भुङ्क्ते। इस वाक्य से न होगा ॥ १५४६ ॥

१५४७–यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥ अ० ॥ ३।४।२८ ॥

सिद्ध कृञ् धातु का अप्रयोग हो असूयाप्रतिवचनगम्यमान हो। और यथा, तथा शब्द उपपद होंतो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय हो। असूया अर्थात् जो न सहन कर के दूसरे की निन्दा करना उस काप्रतिवचन उत्तर। जैसे, कथं तत्र पठिष्यसि। यथाकारं पठिष्यामि तथाकारं पठिष्यामि किं तवानेन। कैसे वहां पढ़ेगा। जैसे पढ़ूंगा वैसे पढ़ूंगा तुझ को इस से क्या। असूयाप्रतिवचन के ग्रहण से यहां न हुआ। यथा कृत्वाहं पठिष्यामि तथात्वं द्रक्ष्यसि। सिद्धाप्रयोग के ग्रहण से यहां न हुआ। शिरो यथा कृत्वाहं भोक्ष्ये किं तवानेन ॥ १५४७ ॥

१५४८–कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥ अ० ॥ ३।४।२९ ॥

कर्म उपपद हो तो साकल्य अर्थ में दृश और विद धातुसे णमुल् प्रत्यय हो। पुस्तकदर्शं पठति। अर्थात् जो जो पुस्तक देखता है उस२ को पढ़ लेता है। भिक्षुवेदं ददाति। जिस२ भिखारी को जानता पाता विचारता उस२ को देता है। ब्राह्मणवेदं भोजयति (विद) से ज्ञान लाभ और विचार इन अर्थों वाले विदधातु का ग्रहण है। साकल्य ग्रहण से यहां न हुआ पुस्तकं दृष्ट्वा पठति ॥ १५४८ ॥

१५४९-यावति विन्दजीवोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३० ॥

यावत् उपपद हो तो विद्लृ और जीव धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यावद्वेदं भुङ्क्ते । अर्थात् जितना पाता है उतना भोजन करता है। यावज्जीवमधीते । जितना जीवता है उतना अध्ययन करता है ॥१५४९॥

१५५०-चर्मोदरयो पूरेः ॥ अ० । ३ । ४ । ३१ ॥

चर्म और उदर उपपद हों तो णिजन्त पूरि धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पूरी +णिच्, चर्मपूरमाच्छादयति । चाम पूरा ढांपता है । अर्थात् जितना शरीर का चाम है सब ढांपता है । उदरपूरं भुङ्क्ते । उदर पूरा भोजन करता है ॥१५५०॥

१५५१-वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम्॥अ०॥३।४।३२॥

प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से जो वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो तो कर्मोपपद णिजन्त पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो और इस पूरी धातु के ऊकार का लोप भी विकल्प करके हो । गोःपदं गोष्पदं, गोष्पद पूरयित्वा वृष्टो मेघः, गोष्पदपूरंवृष्टो मेघः, ऊलोपपक्ष में । गोष्पदप्रंवृष्टो मेघः । गौ के खुर पूरा कर मेघ बरसा । अस्य ग्रहण इसलिये है कि धातु ही के ऊकार का लोप हो उपपद के ऊकार का न हो । जैसे मूषिकाविलपूरं वृष्टो मेघः । मूषिकाविलप्रं वृष्टो मेघः ॥१५५१॥

१५५२-चेले क्नोपेः ॥ अ०॥ ३ । ४ । ३३ ॥

वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो और चेल शब्दार्थक कर्म उपपद हो तो णिजन्त क्नूयी धातु से णमुल् प्रत्यय हो । चेलक्नोपं वृष्टो मेघः । वसनक्नोपं वृष्टोमेघः । चीरक्नोपं वृष्टो मेघः । कपड़ा भिगोने भर मेघ बरसा ॥१५५२॥

१५५३-निमूलसमूलयोः कषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३४ ॥

निमूल और समूल कर्म उपपद हों तो कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । निमूल कषति, निमूलकाषं कषति । जड़ को छोड़ के जैसे काटता हो वैसे काटता है । समूलं कषति समूलकाषं कषति । जड़ समेत जैसे काटता हो वैसे काटता है । यहां से कषादिकों का प्रकरण है इन में यथाविधि अनुप्रयोग अर्थात् जिस धातु से णमुल् विधान करें उसी धातु का पीछे प्रयोग होता है । और इस प्रकरण में पूर्वकाल की अनुवृत्ति नहीं है ॥ १५५३॥

१५५४–शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३५ ॥

शुष्क, चूर्ण, रूक्ष ये कर्म उपपद हों तो पिष धातु से णमुल प्रत्यय हो । शुष्कपेषं पिनष्टि । सूखा पीसता हो वैसे पीसता है । चूर्णपेषं पिनष्टि । रूक्षपेषं पिनष्टि ॥ १५५४ ॥

१५५५–समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ् ग्रहः ॥ अ० । ३।४।३६ ॥

समूल अकृत जीव ये कर्म उपपद हों तो यथासंख्य करके हन् कृञ् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । समूलघातं हन्ति । मूल समेत जैसे मारता हो वैसे मारता है । अकृतकारं करोति । न किये को जैसे करता हो वैसे करता है । जीवग्राहं गृह्णाति । जीव का ग्रहण करता हो वैसे ग्रहण करता है ॥१५५५॥

१५५६–करणे हनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३७ ॥

करण उपपद हो तो हन् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पादेन हन्ति, पादघातं हन्ति। यष्टिकाघातं हन्ति । लात वा लठ से मारता हो वैसे मारता है ॥१५५६॥

१५५७–स्नेहने पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३८ ॥

स्नेहन अर्थात् जिससे सचिक्कण करे ऐसा करण उपपद हो तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । उदपेषं पिनष्टि । तैलपेषं पिनष्टि । कषायपेषं पिनष्टि । उदक, तैल पीसता है ॥ १५५७॥

१५५८–हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३९ ॥

हस्तवाची करण उपपद हो तो णिजन्त वृतु और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । हस्तेन वर्त्तयति हस्तवर्त्तं वर्त्तयति । करवर्त्तं वर्त्तयति । हस्तेन गृह्णाति, हस्तग्राहं गृह्णाति करग्राहं गृह्णाति ॥ १५५८ ॥

१५५९–स्वे पुषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४० ॥

स्वशब्दार्थक करण उपपद हो तो पुष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । स्वशब्द आत्मा आत्मीय ज्ञाति और धन का वाची है । स्वेन पुष्णाति स्वपोषं पुष्णाति । आत्मपोषं पुष्णाति । पितृपोषम् । मातृपोषम् । धनपोषम् । रैपोषम् पुष्णाति॥१५५९॥

१५६०–अधिकरणे बन्धः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४१ ॥

अधिकरणवाची उपपद हो तो बन्ध धातु से णमुल प्रत्यय हो । चक्रे बध्नाति चक्रबन्ध

बध्नाति । शकटबन्धंबन्धाति । मुष्टिबंधं बध्नाति । पहिये गाड़ी वा मुट्ठी में बांधता हो वैसे बांधता है ॥१५६०॥

१५६१–संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४२ ॥

संज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो । क्रौंच इव बध्नाति क्रौंचबन्धं बध्नाति । क्रौंचबन्धं बद्धः । मयूरिकाबन्धं बध्नाति । अट्टालिकाबन्ध बध्नाति । ये बंधनई के नाम हैं। क्रौंच पक्षी मोरनी और अटारी के समान बांधना हो वैसे बांधता है॥ १५६१ ॥

१५६२–कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥ अ० ॥ ३।४।४३॥

कर्तृवाचक जीव और पुरुष शब्द उपपद हों तो यथासंख्य करके नश और वह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । जीवनाशं नश्यति । जीव सो नष्ट होता है । पुरुष वाहं वहति । पुरुष की वहाई वहता है अर्थात् पुरुष जैसे जहां तहां वस्तु लेजाने लेआने में वहता रहता है वैसे वहता है । कर्त्तृवाचक के ग्रहण से यहां न हुआ । जीवेन नष्टः । पुरुषेणोढः । यहां जीव और पुरुष ये करण हैं इससे णमुल् न हुआ ! किन्तु क्त प्रत्यय हो जाता है ॥ १५६२ ॥

१५६३–ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥ अ० । ३ । ४ । ४४ ॥

ऊर्ध्वशब्द कर्त्तृवाचक उपपद हो तो शुष और पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो । ऊर्ध्वशोषं शुष्यति। ऊपर को शूखता हो वैसे शूखता है। वृक्ष आदि ऊपर ही को खड़े २ शूखते हैं । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते घटः । ऊपर को पूरा होता हो वैसे घट पूरा होता है अर्थात् घट आदि का ऊपर को मुख होता वर्षा आदि के जल से परिपूर्ण भर जाता है ॥ १५६३ ॥

१५६४–उपमाने कर्मणि च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४५ ॥

उपमानवाची कर्त्ता व कर्म उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । कर्म, घृतमिव निदधाति घृतनिधायं निदधाति जलम् । घी के समान धरता हो वैसे जल को धरता है। कर्त्ता, अज इव नश्यति अजनाशं नश्यति । छेरी के समान नष्ट होता हो वैसे नष्ट होता है ॥ १५६४ ॥

१५६५–कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४६ ॥

उक्तकषादिकों में यथाविधि अनुप्रयोग हो । अर्थात् जिस २ धातु से णमुल् कहा है उसी का पीछे से प्रयोग हो । इसी क्रम से कषादिकों में उदाहरण दिये हैं जैसे । निमूलकाषं कषति इत्यादि ॥ १५६५ ॥

१५६६—उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४७ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल विषयक अर्थ में उपपूर्वक दंश धातु उस से णमुल् प्रत्यय हो। यहां से णमुल् के प्रकरण की समाप्ति तक पूर्वकाल का संबन्ध है। मूलकेनोपदंश्य भुङ्क्ते मूलकोपदंशं मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते। मूरी को काट के उस से भोजन करता है। यहां मूलकमुपदशति। इस अवस्था में मूलकशब्दउपदंश धातु का कर्म भी है तथापि भुजि क्रिया का करण होने से तृतीयान्त हो जाता है। यद्यपि मूलक शब्द का उपदंश के साथ शाब्दसम्बन्ध नहीं है तथापि कर्म होने से उस का अर्थकृतसंबंध है। इतने ही सामर्थ्य से (मूलकटा+उपदंश) इस से णमुल् प्रत्यय होता है और (सामा० तृतीया०) इस सूत्र सामर्थ्य से उपपद समास होता तथा आगे भी उसी सूत्र से विकल्प करके उपपद समास होता है ॥ १५६६ ॥

१५६७—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४८ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो अनुप्रयोग जो धातु उस से जिनका समान कर्म है उन हिंसार्थकों से णमुल् प्रत्यय हो। दण्डोपघातं गाःकलयति। दण्डेनोपघातं गाः कलयति। दण्ड से पीट कर गौओं को गिनता है। दण्डताडं वृषंबध्नाति। दण्डेनोपताडं वृषं बध्नाति। समानकर्मकग्रहण से यहां नहीं होता। अश्वं दंडेनोपहत्य गाः कलयति। यहां उपपूर्व हन् और कल धातु का एक कर्म्म नहीं है ॥ १५६७ ॥

१५६८—सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४९ ॥

सप्तम्यन्त और तृतीयान्त उपपद हो तो उपपूर्वक पीड रुध और कर्ष धातु से णमुल् प्रत्यय हो। पार्श्वोपपीडं शेते। पार्श्वयोरुपपीडं शेते। पांजर की ओर में दाब कर सोता है। पार्श्वाभ्यामुपपीडं शेते। पांजर से दाब कर सोता है। व्रजोपरोधं गाः कलयति। व्रज उपरोधं गाः कलयति। गोड़ा में रोक कर गौओं को गिनता है। व्रजेनोपरोधं गाः कलयति। गोंडा से रोक कर गौओं को गिनता है। पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति। पाणावुपकर्षं धानाः संगृह्णाति। हाथ में मींज कर धानों का संग्रह करता है। पाणिनोत्कर्षं धानाः संगृह्णाति। हाथ से मींज कर धानों का संग्रह करता है ॥ १५६८ ॥

१५६९—समासत्तौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५० ॥

समासत्ति (संनिकट) अर्थ गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो। केशग्राहं युध्यन्ते। केशेषु ग्राहम्। केशैर्ग्राहं युध्यन्ते।

हस्तग्राहम् । हस्तेषु ग्राहम् । हस्तैर्ग्राहं युध्यन्ते । अर्थात् युद्ध की प्रबलता से अत्यन्त निकट होकर लड़ते हैं ॥ १५६९ ॥

१५७०-प्रमाणे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५१॥

प्रमाण गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । द्व्यङ्गुलोत्कर्षम् । द्व्यङ्गुल उत्कर्षम् । द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम् वा काष्ठंछिनत्ति । दोअंगुलके प्रमाण में वा दो अंगुल के प्रमाण से काष्ठ को काटता है इत्यादि॥ १५७०॥

१५७१-अपादाने परीप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५२ ॥

अपादान उपपद हो तो परीप्सा (सबओर से चाहना) अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो । शय्याया उत्थाय, शय्योत्थायं धावति । खाट से उठा और भजा अर्थात् और कुछ काम नहीं देखता है । जहां परीप्सा नहीं है वहां नहीं होता । जैसे आसनादुत्थाय गच्छति ॥ १५७१ ॥

१५७२-द्वितीयायां च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५३ ॥

द्वितीयान्त भी उपपद हो तो परीप्सा अर्थ में धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहं युध्यन्ते । युद्ध की शीघ्रता में और शस्त्रों को छोड़ लाठी वा ढेल लेकर युद्ध करते हैं ॥ १५७२ ॥

१५७३-अपगुरोर्णमुलि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५३ ॥

णमुल् परे हो तो अपपूर्वक गुरी धातु के एच् को विकल्प करके आकारादेश हो [गुरी] उद्यमने । असिमपगूर्य युध्यन्ते, अस्यपगोरम् । अस्यपगारं युध्यन्ते॥ १५७३॥

१५७४-स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५४ ॥

अध्रुव (अस्थिर) स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । अक्षिनिकाणं जल्पति । आंख निकाल कर कहता है । भ्रूविक्षेपं कथयति । भौंहों को फरका कर कहता है । अध्रुव ग्रहण से यहां न हुआ । उत्क्षिप्य शिरः कथयति । शिर पटक के कहता है ॥ १५७४ ॥

१५७५-परिक्लिश्यमाने च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५५ ॥

परिक्लिश्यमान अर्थात् सब प्रकार से विशेष पीडा को प्राप्त जो स्वाङ्ग तद्वाचक जो द्वियीयान्त सो उपपद हो तो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । उरःपेषं युध्यन्ते । छाती

पीसते लड़ते हैं । उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते । शिरःपेषं युध्यन्ते । शिरः प्रतिपेषं युध्यन्ते। समस्त शिर पीसे लड़ते हैं । यह ध्रुवार्थ आरम्भ है॥ १५७५ ॥

१५७६—विशिपतिपदिस्कन्दांव्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५६ ॥

व्याप्यमान (व्याप्ति को प्राप्त) और आसेव्यमान (सेवा को प्राप्त) अर्थ गम्यमान हो द्वितीयान्त उपपद होतो विश आदि धातुओं से णमुल् प्रत्यय हो । विश आदि क्रियाओं से जो गेहादि द्रव्यों का निश्शेष संबन्ध है सो यहां व्याप्ति और क्रिया का जो वार वार होना वह आसेवा समझनी चाहिये । द्रव्य में व्याप्ति और क्रिया में आसेवा रहती है । विश, गेहानुप्रवेशमास्ते । घर २ में प्रवेश करके बैठता है । वा घर में पैठ २ बैठता है । यहां समास से ही व्याप्ति और आसेवा उक्त हैं । इस से(नित्य०) सूत्र से णमुल् प्रत्ययान्त का द्विर्वचन नहीं होता और उपपदसमास का जहां विकल्प पक्ष है वहां व्याप्ति अर्थ में द्रव्य को द्विर्वचन और आसेवा में क्रिया को द्विर्वचन होता है । जैसे व्याप्ति, गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते । आसेवा, गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते । पति, गेहानुप्रपातमास्ते । गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते । गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते । गेहानुप्रपादमास्ते । गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते । गेहमनुप्रपादमनुप्रपादम् । स्कन्दिर, गेहावस्कन्दमास्ते गेहंगेहमवस्कन्दम् । गेहमवस्कन्दमवस्कन्दम् । व्याप्यमान आसेव्यमान अर्थों के ग्रहण से यहां न हुआ । गेहमनुप्रविश्य भुङ्क्ते । आसेवा आभीक्ष्ण्य है और आभीक्ष्ण्य अर्थ में णमुल् कहा है इस लिये यह सूत्र द्वितीयोपपद होने से उपपद समास के लिये हैं ॥ १५७६॥

१५७७—अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु॥अ०॥३।४।५७॥

कालवाची द्वितीयान्त उपपद होंतो क्रिया का व्यवधान करानेवाला जो अर्थ उस में वर्त्तमान जो अस्यति, तृष्, धातु उन से णमुल् प्रत्यय हो [असु] क्षेपणे द्व्यहात्यासं गाः पाययति । द्व्यहमत्यासं गाः पाययति । दो दिन छोड़ के गौओं को पियाता है। यहां द्व्यह शब्द कालवाची द्वितीयान्त है । अतिपूर्वक अस धातु पान क्रिया के व्यवधान में वर्तमान है इसी प्रकार द्व्यह तर्षं गाः पाययति । द्व्यहं तर्षं गाः पाययति । यहां भी जानना चाहिये । अस्यति तृष् ग्रहण से यहां न हुआ । द्व्यहमुपोष्य भुङ्क्ते । क्रियान्तर ग्रहण से यहां न हुआ । अहरत्यस्य मगधान् गतः । कालग्रहण से यहां न हुआ । योजनमत्यस्य जलं पिबति । यहां अध्वविषयक योजन शब्द उपपद है॥ १५७७।

१५७८—नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५८ ॥

द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद हो तो आङ्पूर्वक दिश् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । नामादिश्याचष्टे, नामादेशमाचष्टे । नामगृहीत्वाचष्टे, नामग्रहमाचष्टे । नाम-उच्चारण कर वा नाम लेकर कहता है ॥ १५७८ ॥

१५७९—अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ॥३।४।५९॥

अयथाभिप्रेताख्यान (अभिप्रायविरुद्ध) अर्थात् अप्रिय वाक्य को ऊंचे स्वर से कहना और प्रिय वाक्य को नीचे स्वर से कहना अर्थ गम्यमान हो और अव्यय उप-पद हो तो कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । उच्चैः कृत्य । उच्चैः कृत्वा । उच्चैः कारमप्रियमाचष्टे । नीचैः कृत्य । नीचैः कृत्वा । नीचैः कारम् । प्रियं ब्रवीति अप्रिय को ऊंचे स्वर से और प्रिय को नीचे स्वर से अर्थात् धीरे से कहता है । यहां क्त्वा ग्रहण (त्वा च) इस सामासिक सूत्र से समास होने के लिये है ॥ १५७९॥

१५८०—तिर्यच्यपवर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६० ॥

अपवर्ग (समाप्ति) अर्थ गम्यमान हो और तिर्य्यच् शब्द उपपद हो तो कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । तिर्य्यक्कृत्य तिर्य्यक्कृत्वा तिर्यक्कारं कार्य्यं गतः । कार्य्य को समाप्त करके गया । जहां अपवर्ग न हो वहां नहीं होते । तिर्य्यक्कृ-त्वा (१५१६) काष्ठंगतः । काठ को तिरछा करके गया । यहां समाप्ति कथन नहीं है ॥ १५८० ॥

१५८१—स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥अ०॥ ३ । ४ । ६१ ॥

तस् प्रत्यान्त स्वाङ्गवाची उपपद हो तो कृ, भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्र-त्यय हो । मुखतःकृत्य गतः । मुखतः कृत्वा गतः । मुखतः कारं गतः । मुख से कर गया पृष्ठतो भूय । पृष्ठतो भूत्वा । पृष्ठतो भावं गतः । पीठ से हो के गया । स्वांग ग्रहण से यहां न हुये । सर्वतः कृत्वा गतः । तस् ग्रहण से यहां न० । मुखीकृत्य गतः । यहां (स्त्रैण०८५६) च्वि प्रत्यय होता है ॥ १५८१ ॥

१५८२—नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६२ ॥

च्व्यर्थ नाधार्थप्रत्ययान्त शब्द उपपद हों तो कृ और भू धातु से क्त्वा और ण-मुल् प्रत्यय हो । अनाना नानाकृत्वा गतः, नाना कृत्वा गतः । नानाकृत्य गतः । नानाकारं गतः । थोड़े को बहुत करके गया । विनाकृत्वा गतः । विनाकृत्य गतः ।

विनाकारं गतः । नानाभूय गतः । नानाभूत्वा गतः । नानाभावं गतः । विनाभूय गतः । विनाभूत्वा गतः । विनाभावं गतः । द्विधाकृत्य । द्विधाकृत्वा । द्विधाकारं गतः । द्विधाभूय । द्विधाभूत्वा द्विधाभावं गतः । द्वैधंकृत्य । द्वैधंकृत्वा । द्वैधंकारं गतः । द्वैधंभूय । द्वैधंभूत्वा । द्वैधंभावं गतः । प्रत्यय ग्रहण से यहां नहीं होते । हिरुक् कृत्वा विना कर के । पृथक् कृत्वा गतः । अलग करके गया । च्व्यर्थग्रहण से यहां न० । नानाकृत्वा काष्ठानि गतः । काष्ठों को फैला के गया ॥ १५८२ ॥

१५८३-तूष्णीमि भुवः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६३ ॥

तूष्णीम् शब्द उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों । तूष्णींभूत्वा । तूष्णींभावं स्थितः । चुप होकर ठहर रहा ॥ १५८३ ॥

१५८४-अन्वच्यानुलोम्ये ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६४ ॥

अन्वच् शब्द उपपद हो तो भू धातु से आनुलोम्य (अनुकूलपन अर्थात् दूसरे के चित्त की प्रसन्नता रखने) अर्थ में क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हों । अन्वग्भूय आस्ते । अन्वग्भूत्वास्ते । अन्वग्भावमास्ते । दूसरे के अनुकूल होकर बैठता है । आनुलोम्य ग्रहण से यहां नहीं होते । अन्वग् भूत्वा (१५१६) पठति । पीछे होकर पढ़ता है ॥ १५८४ ॥

इत्याख्यातः प्रचरितगिराख्यात आख्यातिकेन
प्रोक्तः पातञ्जलमथ मतं प्रेक्ष्य दाक्षीसुतस्य ।
वेदाधीनान्नियतविषयस्थानमारोप्य योगान्
विज्ञायन्तां निगमवचनान्याशु जिज्ञासुभिर्यत् ॥ १ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत आख्यातिको

ग्रन्थः पूर्त्तिमगात् ॥

अथ आख्यातिकशुद्धाऽशुद्धपत्रम् ॥

भूमिका

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	२	उस	उन
१	१३	भुंक्ते	भुङ्क्ते
२	२	घनांत	घनान्त
२	१७	कता	कर्ता
३	२	संभवित	संभावित (नोट)
५	३	गुरुणानुद्गूर्णा	गुरुणानुस्नुद्गूर्णा
५	५	राञ्चि	रञ्जि
५	१५	इनक्त	इनसात
५	२१	ने	नें
६	८	तों	तों में
६	८	कारन्त	कारान्त
७	२	रंज	रञ्ज
८	६	ष्टविहा	ष्टाविह

आख्यातिक

पृष्ठम्	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१६	जो प्रत्यय	जोतिङ्भिन्नप्रत्यय
२	४	अन्त्यवर्ण	अन्त्यहल्वर्ण
३	१०	रहतसन्ते	रहते
३	२३	अंग	अङ्ग
”	”	और से लेके जावे तक	
३	२५	अंग	अङ्ग
४	३	हों	हो
४	७	प्रत्ययके	तद्धित से भिन्न प्रत्यय के

पृष्ठम्	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
४	१०	ऽर्द्ध	ऽऽर्द्ध
५	८	अन्त	अन्त यह
५	१३	हों	हो
५	२३	धातुओं से	धातु से
७	५	भूव	भूव्
८	८	कार्य भी	कार्य ही
८	८	इस	यह अधिकार सूत्र है इस-
८	११	कर्तव्ये	कर्तव्ययोः
९	९	लट्	लृट्
९	११	लुट्	लृ, लुट्
९	२४	उस	उस अङ्ग
१०	१२	केवाचक	में
१०	१६	आदेश	आदेशरूप
१०	२०	छन्द	छन्द और अन्य तरस्याम्
१०	२१	लकारहो	विकल्पसेलकारहो
१२	१	भाविषाम्	भाविषाम्
१२	१०	अर्थ में भी	अर्थ में वर्त्तमान धातु से
१२	१२	केइकारको	के आदेशों के इकार केस्थान में
१३	१	१०५	१०१
१४	२	२६	६६
१४	४	मंत्राण	मन्त्रण
१४	६	आमंत्रण	आमन्त्रण

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१४	२१	अनन्त्य	लिङ्के अनन्त्य	४२	९	संयोग—	धातु का अवय-
१४	२२	अत्मनेपद	आत्मनेपद				वसंयोग
१६	१३	अंग	अङ्ग	४२	११	धातुस	धातु से
१६	१६	अङ्गों	अङ्ग	४३	१७	धातु	इवर्ण और उव-
१६	१७	७७	७५				र्णान्त धातु
१६	२२	लकारों को	लकारोंकेपरेरहते	४३	१८	१५८	१४८
१७	६	७७	७५	४६	६	श्वेदि	श्व्येदि
१७	२६	प्रत्ययोंकी	प्रत्ययकी	४९	२	कडि	कड
१८	२	प्रत्ययों का	प्रत्ययका	४९	१८	इग्वान्हलन्तधातु	इक्समीप हल्
१८	२५	६२	७२	५०	१२	होवे	होवे कित्ङित्लि-
१९	२१	बलादि	वलादि				ट् और सेट्थल्
१९	२३	में से	में जो से, उस				परे रहते
१९	२५	सीध्वं	षीध्वं	५०	१८	आतां	आताम्
१९	२६	सीध्वं	षीध्वं	५२	१७	मंत्रे	मन्त्रे
२०	६	होवे	होवे लिट् परे होतो	५३	५	जुगुबूव	जुगुप्व
२१	२	सीध्वं	षीध्वं	५३	५	जुगुम्म	जुगुप्म
२४	२०	अंग	अङ्ग	५६	१०	कर्ता में	कर्ता में वर्त्तमान
२६	८	उपधाभृत	उपधाभूत,	५८	१६	६ । १	३ । १
२६	२२	स्वदि,स्विदि	स्विदि, स्वदि,	५९	२१	हो जाता ह	हो जाता है
२६	२३	स्वञ्ज स्वपय,	स्वञ्जिनस्वपितयश्च	६०	१०	हों	हो
२७	१९	उदात्तेत	अनुदात्तेत	६०	२४	होंते	होतो
२९	१०	धातुओं से	धातु से	६०	२५	प्राप्तप्राप्त	प्राप्ताप्राप्त
३८	२५	द्विपंचाशत्,	द्विपञ्चाशत्	६०	२५	क्याकि	क्योंकि
३९	१७	संमीप	समीपं	६१	४	संज्ञक	संज्ञक प्रत्यय
४०	७	अलुञ्चुत्	अलुञ्चत्				जिससे परे होऐसे
४१	२	अचिर्षाति	अचिषाति	६१	१९	सीध्वं	षीध्वं

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
६६	७	दीर्घ	११० दीर्घ
६६	७	धातुको	धातु को १४७
६६	७	। १४७	....
६६	८	। ११०	....
६९	६	हों	हो
७२	२७	अवयव जो झषन्त एकाच् वश्	अवयव जो एकाच् झषन्त उसके अवयव वश्
७४	२६	पंचाशत्	पञ्चाशत्
७५	२१	की आदि	के आदि में
७५	२३	आनष्ट	आनष्ठ
७६	१५	भ्र	भ्रु
७६	१५	हों	हो
७८	१४	। १ । ३७ ।	१ । ३८
७८	६	अर्द्धधातुक	आर्द्धधातुक
७८	२७	अपोषीत्	अपोषीत्
८३	२०	परे स्य और सन् प्रत्यय के विषय में	स्य और सन् प्रत्यय परे हों तो
८५	५	। २ । ७२ ।	२ । ६०
८८	६	रंज	रञ्ज
९०	७	बन्धुषु (भाई-बन्धुओं का समूह)	बन्धुषुचसमूह और बन्धुचेष्टा
९०	२७	कित् लिट्	कित्ङित्लिट्
९०	२७	धातुओं	धातु
९०	२१	(दुवम्)	(टुवमु)
९१	१	इन के	इन के अकार के स्थान में

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
९५	१७	संबरण	संवरण
९५	२१	बरणे	वरणे
९५	२७	जुगुहिथ	जुगूहिथ
९७	९	बभ्रुः	बभ्रुः
९८	९	जह्रिव जह्रिम	जह्रिव । जह्रिम
९८	१०	जह्रिषे जह्रिद्वे जह्रिवहे	जह्रिषे । जह्रिद्वे जह्रिवहे
९९	१४	होजावे	द्विर्वचनही कर्तव्य होवे तो,
१०२	४	अपास्यात्	अपास्यत्
१०२	२९	होकर,	हो कर
१०३	१४	लिट्में	लुट् में
१०५	१६	। २५९ ।	१९६
१०६	२८	अजैषीत्	अजैषीत्
१०६	२२	जाना । द्राता । द्राता । स	जानो । द्रोता । द्रोतासि
१०७	१	त्वारंशत्	चत्वारिंशत्
११०	१३	(२०५)	(५६)
१११	२६	पंचदश	पञ्चदश
११२	१३	१५१	२५१
११३	२२	राशीतिः	राशीतोः
११६	२७	अनुनासिकका	उपधाभूतनकारका
११७	१३	लिटचभ्यास्यो	लिटचभ्यासस्यो
११७	२४	इयष्ट	इयष्ठ
११८	१	[टुवमु]	[डुवमु]

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
११८		ऊवाह	उवाह
११८	१३	[illegible]वाह्तत्	अवाह्मीत्
११८	१४	अव[illegible]ताम्	अवह्लाताम्
११९	[illegible]	[illegible],	घश, व्यच,
१२३	१	[illegible]८४	२१४
१२४	२६	बघ	वध
१२५	१	सब प्रयोगों में बध अशुद्ध है	वध
१२६	१८	लीढासि लीढा से	लेढासि लेढासे
१२७	६	(१३)चरुयो	(१०३) चरव्यौं
१२७	१४	चकशतु	चक्शतुः
१२७	१६	।खयाष्पति	ख्यास्यति
१२८	९	संचद्दिासे	संचद्दितासे
१२८	१५	ईड्	ईड
१२८	१६	ईश, ईड, और जन धातुओं से	ईड और जन धातु से
१२८	१६	उन को	उस को
१३०	४	सविसीध्व	साविषीध्वम्
१३०	८	होंता	होतो
१३१	७	। धातुओं से	धातु से
१३१	२४	ऊर्णावाते	ऊर्णुवाते
१३२	७	अद्यावीत्	अद्यौषीत्
१३३	२४	अस्तुवीयात	स्तुवीयात्
१३४	१९	व्यजन की	व्यञ्जन की

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१३४	२०	वच+णल्	वच्+णल्
१३५	९	३।११७	४। ११७.
१३५	२७	पर्यंत	पर्यन्त
१३६	१५	कित्लिङ्	यकारादि कित् लिङ्
१३७	१८	अध्यगीष्यत्	अध्यगीष्यत
१३७	१९	अध्यागीष्यन्त	अध्यगीष्यन्त
१४०	७	यांत	यान्त (नोट)
१४१	११	उदित्ह	ऊदित् है
१४१	१४	माष्टी	मार्ष्टि
१४२	१९	(३५६)	(३५७)
१४३	१८	जागर्ति	जागर्षि
१४५	४	दरिद्रयात्	दरिद्र्यात्
१४५	१२	(३६५)	(३६६)
१४६	१३	वैदिक	वेद
१५०	२	ओहाक्	ओहाङ्
१५१	६	यकारादि	यकारादि कित् ङित
१५१	२१	अदत्त्	अदत्त
१५२	१८	संज्ञकधातुओं को	संज्ञकलघूपध धातु को
१५३	११	गणन्तात्	गणान्तात्
१५६	१	वत	वृत
१५८	७	आलास्यत	अलास्यत
१५८	१५	डीङ्की	डीङ्को

पृ० पं० अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ० पं० अशुद्धम्	शुद्धम्
१५८ २२ (२४८)	(२४९)	१८६ ११ विषय में	विषय में विक-ल्प से
१५९ ३ पंचदश	पञ्चदश		
१५६ ६ होंतो	हो तो	१८७ ४ हों तो	हो तो
१५९ १५ अजिनिष्ट	अजनिष्ट	१८७ १६ प्रत्ययहों	प्रत्यय हो
" १६ अजिनिषाताम्	अजनिषाताम्	१८७ १७ हों तो	हो तो
१६२ ८ अवित्	अविध्यत्	१८८ ३ युज	युञ्
१६३ २ सिधु	षिधु-	१८८ ९ होंतो	होतो
१६३ २ सिसेध	सिषेध	१९० २४ अशु	अश
१६४ १२ स्नुह स्निहाम्	ष्णुह ष्णिहाम्	१९१ ६ हेट्णाति	हेठ्णाति
१६४ १३ स्नुह और स्निह	ष्णुह और ष्णिह	१९१ १० पंचवि	पञ्चवि —
१६७ ६ होंतो	होतो	१९३ २९ तुंजत्	तुञ्जत्
१६७ १९ यंत्र	यन्त्र	१९५ ११ टंकयति	टङ्कयति
१६७ २१ [सिञ्] बंधने	[षिञ्] बन्धने	१९५ १७ पंचयति	पञ्चयति
१६८ १४ धातुओं से	धातु से	१९६ १४ तंत्रयते	तन्त्रयते
१७० १४ कित् लिट्	कित् ङित् लिट्	१९७ २३ आचक्रन्दत	आचक्रन्दत्
१७१ २ नतौच	गतौच	१९८ २ लिंगयति	लिङ्गयति
१७१ १४ वैदिकविषय	वेद विषय	१९८ २२ ताटयति	नाटयति
१७३ १२ उद्धविजिष्ट	उदविजिष्ट	१९९ १९ अङःषद	आङःषद
१७३ २३ अवृश्चीत्	अव्रश्चीत्	२०१ १७ चामंत्रणे	चामन्त्रणे
१७४ १३ विवादि	दिवादि	२०१ १९ पर्यंत	पर्यन्त
१७७ ६ बश्चादय	व्रश्चादय	२०२ १० माचेष्ट	माचष्टे
१७७ ६ ब्रश्चआदि	व्रश्चआदि	२०२ ७ उल्लंघन	उल्लङ्घन
१७७ १७ दीर्घांत	दीर्घान्त	२०२ २३ अंक	अङ्क
१८१ ५ पिशी	पिश	२०३ २३ मंगलार्थ	मङ्गलार्थ
१८१ ५ पिंशते	०००	२०४ ३ स्वतंत्र	स्वतन्त्र
१८१ १४ होंतो	होतो		

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२०५	२८	४६२	४६३
२०६	७	पिब	पिव
२०६	१०	४६२	४६३
२०६	२४	अर्थ में	अर्थ में वर्त्तमान
२०८	६	४६२	४६३
२०८	१४	(४६३) इस सूत्र से आकारा	(४६२) इस-सूत्र से आकारा
२०९	१	वा	वा०
२०९	३	रंजयति	रञ्जयति
२०९	६	अर्थ में	अर्थ में वर्त्तमान
२०९	९	हनस्तो	हनस्तोऽ
२१०	६	२८९	२८६
२११	२	५०८	५१०
२११	२०	४।५८।	४।५७
२१२	१२	सन्परे	झलादि सन् परे
२१४	२	रेकचो	रेकाचो
२१६	२३	नीग	नीग्
२१९	८	अलर्तिः	अलर्ति
२१९	११	अतंत्रः	अतन्त्र
२२१	१२	तांग	ताङ्ग
२२१	२०	वर्वृत्तामास	वर्वृतामास (नो-धातु में सर्वत्र एक तकार है)
२२१	२८	जसुत्व	जश्त्व
२२२	१	संधि	सन्धि (नोट)
२२२	२४	झलादि	झलादि कित्-ङित्
२२३	५	झलादि	झलादि कित्ङित्
२२३	५	शकार और छकार का	छकार और वकारका
२२४	७	(२९) अ-कोरिङ्	(२३९) अ को रिङ्
२२८	१२	क्विब्झलोः	क्विझलोः
२२८	१५	थोरिव	थौरिव
२३०	१	कत्तकष्ट	कष्टकत्त
२३०	७	धातु के	धातु के अर्थ में
२३०	२७	नहिरायते	नीहारायते
२३१	१	सोटा	सोटा कष्टा
२३१	२५	रत्वानि	रदन्तत्वानि
२३२	१	जोटीभूताः	जटीभूताः
२३२	२३	(४६२)	(४६३)
२३४	११	प्रसंग	प्रसङ्ग
२३५	९	बल्गु	वल्गु
२३६	२५	अत्मनो	आत्मनो
२३७	१६	आधीन	अधीन
२३८	१९	व्यातिहार	व्यतिहार अर्थ
२३९	६	अन्यत्र	अन्यत्र अर्थ में
२४०	४	करने	करने अर्थ
२४०	२३	करणादि	कर्णादि
२४१	१८	आत्मनेपदहै	आत्मनेपद हो
२४१	४	मंत्र	मन्त्र
२४२	१५	बध	वध
२४२	१८	आहत	आहत

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२४३	५	परस्मैपदको	परस्मैपदकी
२४३	६	स्थान में	स्थान में (१२३) से
२४३	१०	ङित्	ङित् प्रत्यय
२४४	१	१३	१ । ३
२४४	३	विह्वते	विह्वयते
२४४	६	मल्लोमाह्वयते	मल्लो मल्लमाह्वयते
२४४	६	छात्रमायते	छात्रमाह्वयते
२४४	२४	शामनं	शोमनं
२४५	२१	उपसर्गों से	उपसर्ग पूर्वक
२४६	११	जानैते	जानीते
२४६	१७	अन्तत्र	अन्यत्र
२४६	२४	स जानाति	संजानाति
२४६	२५	मंत्रण	मन्त्रणे
२४७	२१	ब्राह्मण:	ब्राह्मणाः
२४८	५	उलंघन	उलङ्घन
२४९	१३	उन उपसर्गोंसे	उस उपसर्ग से
२४९	१५	युज	युज्
२४९	१६	संयुनाक्ति	संयुनाक्ति
२४९	१९	कर्मककी	कर्मकही
२५०	८	उपसिचान्ति	उपसिञ्चान्ति
२५०	२६	बनगुल्मः	वनगुल्मः
२५०	२१	।३।७९	३।६९
२५०	२४	करताहै	करता है
२५१	२३	ब्रीहीन्	ब्रीहीन्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२५२	५	आत्मनेपद	परस्मैपद
२५२	१७	क्रिया;	क्रिया
२५३	१५	ब्रीहयः	ब्रीहयः
		ब्रीहीना	ब्रीहीना
२५४	२९	चि के	च्लिके
२५५	७	भाव्यत	भाव्येत
२५५	१३	नभीहै	भीहै
२५५	१६	वाकृ	वा कृ
२५६		आत्मनेपद	भाव कर्म
२५६	११	बध	वध सर्वत्र है
२५६	१८	गोर्जते	गीर्यते
२५७	४	परे होतो	जिस से परे हों ऐसा णिच् परे होतो
२५८		परस्मैपद	कर्मकर्तृ
२५८	१४	प्रोजन	प्रयोजन
२५९	११	माव	भाव
२६०		भावकर्म	कर्मकर्तृ
२६०	१	भूषाथ	भूषार्थ (नोट)
२६०	२३	भूषयन्त्याः	भूषयिष्याः
२६१	२	अवगीर्ष्ट	अवागीर्ष्ट
२६१	१६	आभूषीयत्व	आभूषीयत्व-
२६१	२१	७।१।१	३।१।१
२६२		आत्मनेपद	लकारार्थ
२६२	२	वस्त्र	वस्त्रं
२६२	४	ररंजेवस्त्र	ररञ्जे वस्त्रं

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२६२	९	अभिज्ञा	अभिज्ञा	२७४	१४	तेभ्योक	तेभ्योऽक
२६२	१५	कश्मीरै	कश्मीरे	२७४	१५	मवृणीय	मवृणीतायं
२६३	८	इतिह	इतिहा	२७४	२४	साढः	साढः
२६३	१६	युधिष्ठिरः	युधिष्ठिरः	२७४	२५	साढ्	साढ्
२६३	१८	धातुभे	धातु से	२७५	३	वकुषु	वाकूषु
२६५	२४	क्षिप्रवाची	क्षिप्रवाचीपद	२७६	१०	स्यति	स्यति, स्तौति,
२६६	७	ध्यापिपत्	ऽध्यापिपत्	२७८	८	सकारको	सकारकोविकल्पसे
२६६	१६	तत्र	तत्र द्विरोदनं	२७८	१७	अनुष्यन्दते	अनुष्यन्देते
२६६	१७	तत्र	तत्र द्विरोदनं	२८१	१०	आग	आगे
२६६	४४	यढवरं	यदवरं	२८१	१५	विस्तारः	विस्तरः
२६६	२६	रोद्धमास	रोऽर्द्धमास	२८१	२०	युधिम्या	युधिम्यां
२६७	१४	निमित्तम	निमित्तमें	२८१	२५	इनसे	इन से परे
२६७	१८	वहां	वहां भूतकालमें	२८२	३	बाहि	बार्हि
२६८	८	लुङ्	लृट्	२८३		८।१।१०१	३।१०१
२६८	११	याजयिष्यत	अयाजयिष्यत्	२८३	१०	अग्निटुं	अग्निष्टूवं
२६८	२०	किकिल	किङ्किल	२८३	१३	१३मोत्मनो	मात्मनो
२६९	४	भवद्विधः	भवद्विधः	२८३	१८	स्तुस्तोम	स्तुतस्तोम
२७०	२८	यानाहेतु	यानहेतु	२८५	७	महामास्य	महाभाष्य
२७१	१५		फूल से ले के २	२८५	९	उसका	उस का निषेध
			पङ्क्तिनोटकी	२८५	१३	नहो	नहोस्य और सम
२७१	१८	निमंत्रण	निमन्त्रण				परेहोतो
२७२	३	३६४	११४	२८५	११	परिषजाते	परिषस्वजाते
२७३	३	हार्पीत्	हार्षीत्	२८६	४	रमाभ्यां	रमाभ्यां
२७३	६	तब	तव	२८६	१८	बृंहयणीम्	बृंहयणीयम्
२७४	१०	चर्वेते	चर्वते	२८६	२१	सज्ञा	संज्ञा
२७४	१३	धातुसबन्ध	धातुसंबन्धहोनेपर	२८७	१	पृष्य	पृष्य [नोट]

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२८७	२	पगः	पगाः	३०२	१२	युज्	युज्
२८७	३	अपुष्याः	अपुष्पाः [नोट]	३०३	२०	प्रत्पय	प्रत्यय
२८७	४	स्मृतः	स्मृताः	३०३	२५	॥७।	॥अ०७।
२८७	१८	कायनम्	कावनम्	३०४	५	प्रत्य	प्रत्यय
२८९	८	घान्ही	घाह्ही	३०६	१५	नयिपेस्था-नयि,	नीयो पस्थानीय
२९०	९	मिमित्त	निमित्त				
२९०	२७	अन्त(समीपर्वी)जोसर्गस्थ	स्यति अन्त (समीप वर्ती) जोउपसर्गस्थ	३०७	२७	क धातु	कृधातु
				३१०	८	वंद्यमान	विद्यमान
				३१२	१२	अकारान्त	आकारान्त
				३१६	२१	होंतो	होते
२९१	११	देशो	देशे	३१७	१६	प्रत्ययहों	प्रत्ययहैं।भूति-अर्थगम्यमान-होते
२९१	२५	ग्रहीन	गृहीत				
२९२	७	प्रनेमुञ्चतम्	प्र नोमुञ्चतम्				
२९२	१४	निष्टा	निष्ठा	३१७	२०	मंत्र	मन्त्र
२९२	१७	निविर्ण	निर्विराण	३१७	२७	ब्रीहिः	व्रीहिः
२९२	१८	निर्विणो	निर्विराणो	३२५	५	होंता	होतो
२९४	१०	अविहितलक्षणं	अविहितंलक्षण	३२५	१९	ढयौकरणम्	क्यौकरणम्
२९६	१४	अदुपद	अदुपध	३२५	२१	च्व्यर्व	च्व्यर्थ
२९७	२४	जृष्	जॄष्	३२६	२	सुभंग	सुभगं
२९८	९	क्यपूयत्	क्यप्	३२८	७	क्रमो	क्रमगमो
२९९	१६	(सन्धि१०९)	(सन्धि २०८)	३२९	२०	भ्रस्यति	भ्रश्यति
३००	१४	।२।५३	३ ।५२	३२९	२४	जनीः	जनौः
३०१	२६	जित्य	जित्या	३३०	१३	सत्रौं	सूत्रौं
कृत्यप्राक्रिया			३०२	३३४	१९	मनु	ममनु
३०२	३	बाउरी	बाउड़ी	३४०	४	मर्प्ये	मर्ये
३०२	८	कृज	कृञ्	३४५	५	इडागम्	इडागम

आख्यातिकशुद्धाऽशुद्धपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
३४७	११	ह्लादो	ह्लादो
३५४	१०	शतृ	शतृ
३५४	२१	२१३७	१२१७ ।
३५९	८	अनुराधी	अनुरोधी
३६०	१४	सबुल	सबुल्
३६१	७	३२	२ । २
३६१	१७	महा	महा
३६२	११	रुशाकः	शारुकः
३६९	१८	विभ्रट्	विभ्राट्
३६९	१	प्रत्तय	प्रत्यय (नोट)
३७०	२	सत्मुथं	समुत्थं
३७२	१४	पठंतं	पठन्तं
३७३	७	वचनाना	वचना
३८१	१४	पूद्रुवः	पूद्रुवः
३८७	२०	कोग	को गा
३८९	४	मय्	मप्
३९०	२१	मंत्र	मन्त्र
३९३	६	षाध्यो	षध्यो
३९४	१५	मषतेरः	भवतेरः
३९५	२४	कारीका	कारिका
३९५	२८	पीरपाटी	परिपाटी
३९६	१०	वादहै	वाद है
३९७	७	प्रवृश्चन	प्रव्रश्चन
३९७	१३	छादेर्घेद्युप	छादेर्घेद्व्युप
३९७	२०	गवश्चर	गावश्चर
३९८	२८	क्याकै	क्योंकि
४००	२२	१४६४	१४२४—वा०
४०१	१६	अंगों	अङ्गों
४०१	२४	कष्येन्	कष्येन् शष्ये
			शष्येस्
४०२	२३	शकवन्	शकुवन्
४०५	१८	प्रश्नवयो	प्रस्त्रवयो
४०६	१०	ऋत	ऋत
४०६	१५	द्युतित्वा	द्योतित्वा
		द्युतित्वा	द्योतित्वा
४०६	१७	जृव्रश्चो: क्त्वा	जृव्रश्चयोःक्त्वि
४०७	२	अंग	अङ्ग
४०९	५	कभी	को भी
४१०	२७	वाकृगू	वागूं
४११	१	स्वान्दुं	स्वांदुं
४१२	१२	गोष्यद	गोष्पदं
४१२	१९	वृष्ठो	वृष्ठो
४१४	१	मुष्टिवंधं	मुष्टि बन्धं
४१४	९	जीवसो	जीव
४१६	९	मना	मगा
४१८	१९	प्रत्यान्त	प्रत्ययान्त
४१९	१८	जिाज्ञसु	जिज्ञासु